ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मई २०१९

Date of Printing = 05-5-19
प्रकाशन दिनांक= 05-5-19

वर्ष ४८ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९५
विक्रम-संवत् : बैसाख-जेठ २०७६
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- ❑ ऋषि दयानन्द..... २
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ राजनीति में अमर्यादित होती भाषा ४
- ❑ वेदो मे रामायण.... ७
- ❑ इतिहास की कलाकारी १०
- ❑ आर्यसमाज : राष्ट्रचेतना.... १३
- ❑ आर्यसमाज न होता तो..... १५
- ❑ सत्य बोलो, मधुर बोलो १७
- ❑ आर्यों के विमर्श..... १९
- ❑ आदर्श पुरुप राम २१
- ❑ माँ-बाप जिन्दगी के..... २३
- ❑ डॉ. बाबा साहब..... २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

ऋषि दयानन्द का एक महत्वपूर्ण लघु ग्रन्थ -गोकरुणानिधि

(स्मृति शेष डॉ0 भवानीलाल भारतीय)

'गोकरुणानिधि' को लिखकर दयानन्द ने 'गौ के अर्थशास्त्र' की मानो प्रस्तावना ही लिख दी। ऋषि दयानन्द ने गोरक्षा तथा गोवध को मात्र भावना या भावुकता की दृष्टि से नहीं देखा था। वे गोवध में आर्थिक दुर्दशा को देखते थे और गोरक्षा में हमारी ग्राम्य-व्यवस्था पर आधारित अर्थनीति के अभ्युत्थान का स्वप्न देखते थे। यही कारण है कि स्वामीजी ने गाय की रक्षा की अपील को हिन्दू या आर्यजाति की भावना का प्रश्न नहीं बनाया। उन्होंने गौ से होनेवाले लाभों का विवेचन विशुद्ध आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से किया तथा प्रथम बार कुछ आंकडे देकर सिद्ध किया कि यदि एक गौ को मारा जाता है तो कुछ मनुष्य ही अपनी भूख मिटा सकते हैं, किन्तु एक गाय की रक्षा से तथा उसकी होनेवाली सन्तान से असंख्य प्राणियों का हित होता है। इसी तर्क के आधार पर उन्होंने गौ की भांति भैंस और बकरी जैसे उपयोगी पशुओं की रक्षा की आवश्यकता पर बल दिया और मनुष्य के उपयोग में आनेवाले प्राणियों की हिंसा को राज-व्यवस्था से रोकने की बात कही। हमारा यह निश्चित मत है कि गाय जैसे दुधारु पशु के वध से होनेवाली आर्थिक हानि से देशवासियों को परिचित कराया जाये तो हिन्दुओं से इतर, अन्य मतावलम्बी भी गोरक्षा में अपना सहयोग देने के लिए तैयार हो जायेंगे।

स्वामीजी की यह दूरदर्शिता थी कि उन्होंने गौ को भारत की कृषि-व्यवस्था के साथ जोड़ा और गोकृष्यादिरक्षिणी सभाओं की स्थापना पर बल दिया। उन्होंने इस सभा का विधान भी बनाया, किन्तु आगे चलकर गोरक्षा आन्दोलन मात्र हिन्दुओं का होकर रह गया, इसलिए इसे अपेक्षित सफलता नहीं मिली।

यहाँ एक रोचक प्रसंग का उल्लेख कर दें। कुछ समय पहले मैंने एक पत्र में जिज्ञासा प्रकट करते हुए लिखा था कि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में गौ को सर्वत्र पशु लिखा है, उसे 'माता' कहकर कहीं सम्बोधित नहीं किया। यदि कोई सज्जन दयानन्द साहित्य में 'गाय माता' जैसा प्रयोग देखें तो कृपाकर मुझे सूचित करें। इसके उत्तर में जो कहा गया या लिखा गया उसमें तथ्य की अपेक्षा नाराजगी अधिक थी। एक सज्जन ने वेद के -

'माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा
आदित्यानांऽमृतस्य नाभिः।' मन्त्र को उद्धृत कर गाय को रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री तथा आदित्यों की बहन होने की बात कही, किन्तु दयानन्द के वाङ्मय से ऐसा कोई प्रमाण नहीं दे सके जिससे यह सिद्ध हो कि स्वामीजी ने गाय को कहीं 'माता' कहा है। (गाय के दूध में मां के दूध के समान गुण होने से उसे गोमाता कहा जाता है। व्यवस्थापक)

सत्य तो यह है कि ऋषि दयानन्द का दृष्टिकोण यथार्थद्रष्टा का था, वे थोथी भावुकता से किसी प्रश्न को देखने के खिलाफ थे। "गोकरुणानिधि' में लेखक के अन्तस्तल की वेदना और पीड़ा को देखा जा सकता है, जब वे मूक पशुओं का निर्मम वध देखकर अत्यन्त उद्विग्न हो जाते हैं और परमात्मा को सम्बोधन कर कहते हैं-

"हे करुणाकर जगदीश्वर! इन निर्दोष पशुओं का वध देखकर क्या न्याय-व्यवस्था के प्रति हमारे मन में शंका नहीं होगी कि तू कैसा न्यायाधीश है? तू अपनी असीम करुणा से इन अबोध प्राणियों को बचा।"

(स्रोतः ऋषि दयानन्द - सिद्धान्त और जीवन-दर्शन, पृ०-३७८-३७९ प्रस्तुतिः भावेश मेरजा)

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। सविता = ईश्वरः देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।।

तस्य यज्ञफलस्य ग्रहणं केन कुर्वन्तीत्युपदिश्यते।।

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है, इस विषय का उपदेश किया है।

ओ३म्– देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि।। 10 ।।

यजु० १-१०।।

पदार्थः– (देवस्य) सर्वजगत्प्रकाशकस्य सर्वसुखदातुरीश्वरस्य (त्वा) तत् (सवितुः) सविता वै देवानां प्रसदिता। श. १/१/२/१७।। तस्य सर्वजगदुत्पादकस्य सकलैश्वर्य्यप्रदातुः (प्रसवे) सवितृप्रसूतेऽस्मिन् जगति (अश्विनोः) सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा। सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके।। निरु. १२/१।। (बाहुभ्यां) बलवीर्य्याभ्याम्। वीर्य वा एतद्राजन्यस्य यद्बाहू।। श० ५/३/३/१७।। (पूष्णः) पुष्टिकर्तुः, प्राणस्य (हस्ताभ्याम्) ग्रहणविसर्जनाभ्याम् (अग्नये) अग्निविद्यासंपादनाय (जुष्टम्) विद्यां चिकीर्षुभिः सेवितं कर्म (गृह्णामि) स्वीकरोमि। (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्निश्च सोमश्र ताभ्यामग्निजलविद्याभ्याम् (जुष्टम्) विद्वद्भिः प्रीतं फलम् (गृह्णामि) पूर्ववत्।। अयं मंत्रः श. १/१/२! १७-१६ व्याख्यातः।।२०।।

प्रमाणार्थ – (सवितुः) शत. (१/१/२/१७) में 'सविता' का अर्थ 'देवों का उत्पन्न करने वाला किया है। (अश्विनोः) निरुक्त (१२/१) में 'अश्विनौ' का अर्थ सूर्य और चन्द्र किया है। (बाहुभ्याम्) शत. (५/३/३/१७) में क्षत्रिय के बाहुओं को वीर्य कहा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१/१/२/१७-१६) में की गई है। १/१०।।

सपदार्थान्वयः – यत् सवितुः तस्य सर्वजगदुत्पादकस्य सकलैश्वर्यप्रदातुः देवस्य सर्वजगत् प्रकाशकस्य सर्वसुखदातुरीश्वरस्य **प्रसवे** सवितृप्रसूतेऽस्मिन् जगति **अश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा **बाहुभ्यां** बलवीर्य्याभ्यां **पूष्णः** पुष्टिकर्तुः प्राणस्य **हस्ताभ्यां** ग्रहणविसर्जनाभ्याम् **अग्नये** अग्निविद्यासम्पादनाय **जुष्टं** विद्यां चिकीर्षुभि' सेवितं कर्म्म अस्ति, त्वा= तत्कर्माऽहं गृह्णामि स्वीकरोमि।

एवं च **यद्विद्वद्भिरग्नीषोमाभ्याम्** अग्निश्च सोमश्च ताभ्यामग्निजलविद्याभ्यां **जुष्टं=प्रीतं चारु फलं** विद्वद्भिः प्रीतं फलम् अस्ति तदहं गृह्णामि स्वीकरोमि।।१/१६।।

भाषार्थ– जो (सवितुः) सब जगत् के उत्पादक सकल ऐश्वर्य्य के दाता (देवस्य) सब जगत् के प्रकाशक, सब सुखों के दाता ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अश्विनोः) सूर्य चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य्य से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले प्राण के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग से (अग्नये) अग्नि-विद्या को सिद्ध करने के लिए (जुष्टम्) विद्याभिलाषी जनों से सेवित कर्म है, (त्वा) उस कर्म को मैं (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ।

और इस प्रकार जो विद्वानों ने (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम अर्थात् अग्नि और जल विद्या के

शेष पृष्ठ ६ पर

राजनीति में अमर्यादित होती भाषा

-(धर्मपाल आर्य)

मैं मन में सोच रहा था कि अबकी बार मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के विषय में लिखकर उनके पावन व्यक्तित्व को स्मरण करते हुए उनके प्रेरणाप्रद आदर्शों को अपने प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष रखते हुए रामायण की चर्चा करुँगा। इसकी रुपरेखा तैयार करते हुए अपने आपको तैयार कर ही रहा था कि हमारे साथियों ने देश में चल रहे आम चुनावों में होने वाली अमर्यादित, असंसदीय और अत्यन्त निम्न स्तर की पारस्परिक टिप्पणियों की चर्चा शुरु कर दी।

एक मित्र ने तो नाम लेकर उनके द्वारा की गई टिप्पणियों को उद्धृत करते हुए कहा कि नवजोत सिद्धु और मायावती द्वारा की गई वो टिप्पणी जिसमें उन्होंने खुलेआम मुसलमानों से एक दल के समर्थन में तो दूसरे दल के विरुद्ध एकजुट होकर मतदान करने की अपील की, उस के विषय में आपकी क्या राय है? जयाप्रदा पर आजम खाँ के द्वारा की गई टिप्पणी पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है? राहुल गान्धी की चौकीदार चोर वाली टिप्पणी क्या नैतिक अथवा राजनैतिक दृष्टि से उचित है? राजनीति में आलोचना-प्रत्यालोचना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, इससे लेशमात्र भी इन्कार नहीं किया जा सकता लेकिन आलोचना और प्रत्यालोचना की आड़ लेकर व्यक्तिगत चरित्र-हनन और राष्ट्र विरोधी बयानबाजी करना देशद्रोह से कम अपराध नहीं है। मायावती और नवजोत सिद्धु का बयान हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों को भड़काने वाला, आजमखान और उसके बेटे अब्दुल्ला खान का बयान निजी चरित्र हनन करने वाला तथा फारुक अब्दुल्ला व महबूबा मुफती का बयान सीधे-सीधे देशद्रोह की श्रेणी में आता है।

पिछले कुछ दिनों में एक वर्ग विशेष को एक वर्ग विशेष के विरुद्ध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से भड़काने की प्रवृत्ति, निजी चरित्र हनन की प्रवृत्ति तथा देश के विरुद्ध बयानबाजी की प्रवृत्ति नेताओं में बड़ी तेजी से बढ़ी है। ये तो कहना कठिन है कि इन सबका कारण संविधान की लाचारी है, राजनीति का दुर्भाग्य है या फिर लचीले लोकतन्त्र की विडम्बना है। संविधान विशेषज्ञ, सामाजिक विश्लेषक और लोकतन्त्र के प्रबल पक्षधरों की उपर्युक्त टिप्पणियों पर तथा इस तरह की गैरजिम्मेदाराना टिप्पणियाँ करने वालों के विषय में क्या धारणा है? इस तथ्य से मैं अनभिज्ञ होते हुए भी इतना अवश्य कहूँगा कि उपर्युक्त नेताओं की टिप्पणियाँ अपराध की दुर्लभतम श्रेणी में आती हैं। दुर्लभतम अपराध करने वालों को दण्ड भी कठोर दिया जाना चाहिए।

देश की राजनीति आलोचना-प्रत्यलोचना के ऐसे घिनौने दौर में प्रवेश करेगी, इसकी उम्मीद न तो उन आजादी के परवानों को रही होगी, जिन्होंने हमारी आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्यैछावार कर दिया और ना ही उनको आशा रही होगी जो देश की प्रजातान्त्रिक प्रणाली के न केवल सूत्रधार थे, अपितु उसकी सुदृढ़ता एवं अखण्डता के लिए संविधान के निर्माता भी थे। हर कार्य क्षेत्र में आने के अपने कुछ मापदण्ड होते हैं लेकिन राजनीति के क्षेत्र में आने का कोई मापदण्ड नहीं है। शायद यही कारण है कि इसमें अपराधी पृष्ठभूमि वालों का, बदजुबानी करने वालों का, बाहुबलियों का, भूमाफियाओं का, घोटालेबाजों का और राष्ट्रविरोधियों का बोलबाला बुलन्द होता जा रहा है। छद्म धर्मनिरपेक्षता कुछ राजनीतिज्ञों के लिए छद्म आवरण बनी हुई है। राजनीति में कुछ लोग तो केवल इसीलिए बने हुए हैं कि वे देश के दुश्मनों के हाथों का खिलौना बनकर देश की एकता और अखण्डता को चुनौती दे सकें। छद्म धर्मनिरपेक्षता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के संवैधानिक अधिकार की आड़ लेकर ऐसे लोग वैधानिक कार्यवाही से बच जाते हैं। लेकिन उनकी बदजुबानी देश के नागरिकों

पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। राजनीति से राजनैतिक शिष्टाचार का तार-तार होना देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए तथा सामाजिक ताने-बाने के लिए खतरे का संकेत है। राजनीतिज्ञों का जैसा आचरण होगा, समाज उसका अनुसरण करता है। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में श्री राम जाबालि मुनि को कहते हैं -

"कामवृत्तस्त्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते।
यद्वत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः।"

अर्थात् हे मुनिवर! ये प्रजा स्वभावतः अपने राजा के चरित्र का अनुकरण करने वाली होती है। जैसी वृत्ति, प्रवृत्ति, चरित्र और आचरण राजा का होता है, उसी वृत्ति का, उसी प्रवृत्ति का, उसी चरित्र और उसी आचरण का अनुकरण प्रजा करती है। अर्थात् राजा का व्यवहार प्रजाजनों का आदर्श होता है। काश! देश के राजनेताओं ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपर्युक्त कथन पर यदि लेशमात्र भी ध्यान दिया होता, तो राजनीति से राजनैतिक शिष्टाचार इस तरह तार-तार नहीं होता। जब राजनीति में भाषा की मर्यादा भंग होती हो, जब राजनीति में निर्लज्जता से नारी के सम्मान पर आघात किया जाता हो, जब राजनीति में धर्मनिरपेक्षता की आड़ लेकर देश की संप्रभुता को निशाना बनाया जाता हो, जब राजनीति में नैतिक मूल्यों की खुल्लम खुल्ला धज्जियाँ उड़ायी जाती हों और जहाँ राजनीति में लोग राष्ट्र विरोधी भावों को निर्लज्जता से हवा देते हों तो पाठक कल्पना कर सकते हैं कि ऐसी राजनीति और ऐसे राजनेता इस देश को कहाँ ले जाएंगे। वर्तमान राजनीति को राजनेता जिस सोच में ढालने की कोशिश कर रहे हैं, उससे राष्ट्र पर अन्याय और अराजकता का संकट मंडराएगा, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। राजनीति की चौसर पर बिछी चुनावों की बिसात पर जिस प्रकार मुद्दों के मोहरों को चलाया जा रहा है, उन (मुद्दों के मोहरों) से कुछ राजनेता (मुफ्ती महबूबा, फारुख अब्दुल्ला और उमर अब्दुल्ला आदि) देश को नीचा तो दिखा ही रहे हैं, इसके साथ-साथ कहीं न कहीं, उनकी बदजुबानी से पाकिस्तानपरस्ती भी दिखाई देती है।

लोकतन्त्र में यदि बदजुबानी और देशविरोधी भाषा स्वतन्त्रता के अधिकार की श्रेणी में आता है, तो मैं ऐसे लोकतन्त्र को समाज और राष्ट्र के लिए वरदान नहीं, अपितु अभिशाप मानता हूँ। लोकतन्त्र यदि महिला के सम्मान पर आघात पहुँचाने की और सामाजिक शिष्टाचार को तार-तार करने की इजाजत देता है, तो ऐसे लोकतन्त्र में निस्सन्देह परिवर्तन की तत्काल आवश्यकता है।

राजनीति और लोकतन्त्र भाषा की मर्यादा पर टिके हुए हैं। जिन्हें अपने देश की पुरातनी और सनातनी सांस्कृतिक परम्पराओं की चिन्ता है, जिन्हें अपने महापुरुषों और पूर्वजों की पावन चारित्रिक धरोहर की चिन्ता है, जिन्हें अपने राष्ट्रीय गौरव का ख्याल है, जो मजहबी कट्टरता के जुनून से दूर हैं और जिनके लिए राजनीति केवल राष्ट्र के हित का साधन है, ऐसे व्यक्तित्व के धनी किसी भी स्थिति में राजनीति में राजनैतिक शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं कर सकते।

वर्तमान राजनीति में राजनेता जिस प्रकार अपने प्रतिद्वन्द्वी का चरित्रहनन करने में अपना बडप्पन समझते हैं, उससे राष्ट्रीय हित के मुद्दे हाशिए पर धकेल दिए जाते हैं यदि राजनीति में राजनैतिक सूझ-बूझ हो, यदि राजनीति में राष्ट्रीय हित सर्वोपरि हों, यदि राजनीति में बिना किसी भेदभाव के राज- धर्म का पालन किया जाए, यदि राजनीति में परिवारवाद, जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद और साम्प्रदायिकता की जगह राष्ट्रवाद तथा समाजवाद मुख्य हो तो वर्तमान में आम चुनावों में जिस प्रकार एक दूसरे पर सीमा तोड़ते हुए आलोचना-प्रत्यालोचना हो रही है ये दौर खत्म हो जाएगा। जम्मू कश्मीर की समस्या का सम्पूर्ण सामधान हो जायेगा; मन्दिर-मस्जिद का मसला सहजता से सुलझ जायेगा, पाकिस्तान पर प्रभावी अंकुश लग पाएगा; नक्सलवाद पर विजय हासिल होगी; अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी और पाक प्रायोजित आतंकवाद पर निर्णायक विजय प्राप्त होगी लेकिन यह सब तभी संभव होगा जब हमारे राजनेता बदजुबानी की अपनी घिनौनी हरकत पर लगाम लगाएंगे और अपने आचरण में सुधार लाएंगे। प्रज्ञा सिंह

ठाकुर, योगी आदित्यनाथ आदि नेताओं ने भी यद्यपि भाषागत शालीनता की अनदेखी की है लेकिन महबूबा मुफ्ती, फारुख अब्दुल्ला, उमर अबदुल्ला, नवजोत सिंह सिद्धु, मायावती, आजम खान और उसके बेटे अब्दुल्ला की टिप्पणियाँ देश की सम्प्रभुता और सामाजिक ताने-बाने को तहस-नहस करने वाली हैं।

नेताओं द्वारा भाषा की लक्ष्मण रेखा को लाँघने का यह कोई नया मामला नहीं है, इससे पूर्व भी नेताओं ने भाषा की मर्यादा को तोड़ा है। हमारे धर्मग्रन्थ वेद, शास्त्र, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत आदि में वाणी की पवित्रता और मधुरता पर अत्यन्त बल दिया गया है। व्याकरण महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं-

"दुष्टाञ्छब्दान् मा प्रयुक्ष्महीत्यध्येयं व्याकरणम्"

अर्थात् हम दुष्ट शब्दों का प्रयोग न करें इसलिए हमें व्याकरण पढ़ना चाहिए। वेद में तो अनेक बार कटु वाणी से बचने और मधुरवाणी के प्रयोग करने का आदेश-उपदेश और सन्देश है।

यथा- **'गोभिः ष्यामो यशसो जनेषु"** अर्थात् हे प्रभो! हम वाणी की मधुरता और पावनता से परिवार में, समाज में, और राष्ट्र में यशस्वी हो।

"वाचस्पतिः वाचं नः स्वदतु" अर्थात् हे वाणी के स्वामी प्रभो! आप हमारी वाणी को पवित्र और मधुर बनाए। गोस्वामी तुलसी दास ने भी कहा कि

तुलसी मीठे वचन से सुख उपजे चहु ओर।
वशीकरण एक मन्त्र है तज दे वचन कठोर।।

हमारे धर्म ग्रन्थ वेद, शास्त्र और उपनिषद हमें सत्य, न्याय धर्म, मानवता, मधुर बोलने की प्रेरणा दे रहे हैं और किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि

कागा किसका धन हरे, कोयल किसको देय।
मीठी वाणी बोलके जग अपना कर लेय।।

वाणी की कटुता न गृहस्थ जीवन के लिए, न ही संन्यासी के लिए, न पारिवारिक जीवन के लिए, न निजी जीवन के लिए, न ही नैतिक जीवन के लिए उचित है और सार्वजनिक व राजनीतिक जीवन के लिए तो बिल्कुल भी उचित नही है। अपने प्रतिद्वन्द्वी के लिए अमर्यादित बोल बोलने वाले आजम, माया जैसे नेता जिस सम्प्रदाय अथवा मजहब से सम्बन्धित हैं सम्भवतः वो मजहब अथवा सम्प्रदाय भी कटुता की तथा अमर्यादित भाषा के प्रयोग की शिक्षा नहीं देते होंगे।

अन्त में मैं इतना लिखकर अपने विषय को विराम दूँगा कि चाहे बड़ा नेता हो, चाहे छोटा नेता हो, चाहे नया नेता हो अथवा पुराना हो, चाहे नेता जवान हो अथवा बुजुर्ग हो किसी को ऐसी अमर्यादित भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे सामाजिक राष्ट्रीय अस्मिता और अखण्डता को खतरा पैदा हो तथा शत्रु राष्ट्र को पारस्परिक फूट का संदेश मिले। आशा है हमारे नेता इस बात का ध्यान रखते हुए राजनीति में भाषा की मर्यादा को बनाए रखेंगे। ❑❑

पृष्ठ 2 का शेष

द्वारा **(जुष्टम)** जिस सुन्दर फल की कामना की है, उसको मैं **(गृह्णामि)** स्वीकार करता हूँ।।१/१०।।

भावार्थः— विद्वद्भिर्मनुष्यैर्विद्वत्संगत्या सम्यक् पुरुषार्थेनेश्वरेणोत्पादितामस्यां सृष्टौ सकलविद्यासिद्धये सूर्याचन्द्राऽग्निजलादिपदार्थानां सकाशात् सर्वेषां बलवीर्य्यवृद्धये च सर्वा विद्याः संसेव्य प्रचारणीयाः।

यथा जगदीश्वरेण सकलपदार्थानामुत्पादनधारणाभ्यां सर्वोपकारः कृतोऽस्ति, तथैवाऽस्माभिरपि नित्यं प्रयतितव्यम् ।।१।१०।।

भावार्थ--विद्वान् मनुष्य विद्वानों की संगति से, उचित पुरुषार्थ से, ईश्वर की बनाई इस सृष्टि में सब विद्याओं की सिद्धि के लिए सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल आदि पदार्थों से, सब के बल और वीर्य की वृद्धि के लिए सब विद्याओं को पढ़ के उनका प्रचार करें।

जैसे ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उनका धारण करके सबका उपकार किया है, वैसे ही हमें भी नित्य प्रयत्न करना चाहिए।।१/१०।। ❑❑

वेदों में रामायण के नामपद

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो0:-०६८४५०५८३१०)

पूर्व लेखों में मैं प्रदर्शित कर चुकी हूँ कि कैसे शिव आदि कुछ पौराणिक देवी-देवताओं की कल्पना वेदों के कुछ मन्त्रों के भ्रान्तिपूर्ण अर्थों द्वारा विकसित हुई है। नदियों, पुरियों, आदि, के नाम भी वेदों से लिए गए हैं, यह सर्वविदित है। अपने अध्ययन के अन्तर्गत मैंने रामायण व महाभारत के भी कुछ पात्रों के नाम वेदों में पाए। उनके यौगिक अर्थ जानकर, पात्रों के विषय में भी कौतुहल हो जाता है, वे आधक रोचक वन जाते हैं। इस माह में रामायण में आए कुछ नामों का विवरण दे रही हूँ। अगले माह महाभारत के कुछ नामों के विषय में लिखूँगी।

भारतवर्ष में ही क्या, विश्व के ज्ञानभण्डार में वेदों का ऐसा वर्चस्व रहा है कि मनु ने घोषणा की थी-

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।
मनु०१।२१।।

अर्थात् वेदों और वेद के शब्दों से ही, मनुष्य-सृष्टि के प्रारम्भ से, सारे नाम, क्रियाएं और व्यवस्थाएं सम्यक्तया अलग-अलग जानी गईं। इससे हमें ज्ञात होता है कि वेद और संस्कृत से प्रभावित सभी संस्कृतियों में वेद के शब्दों के आधार पर ही वस्तुओं और प्राणियों के नाम रखे गए। फिर मनुष्यों के नाम भी वेद पर आधारित हों, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

तो अब रामायण में आए कुछ अभिधान वेदों में ढूढते हैं और उनके यौगिक अर्थ देखते हैं-

१) <u>रामः</u> - यहाँ ऋग्वेद में एक उल्लेख इस प्रकार मिलता है-

...सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निवितिष्ठन् रुषद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ।।ऋक्० १०।३।३।।-

यहाँ पर सायण ने 'राम' के अर्थ 'कृष्णवर्ण वाला अन्धकार' किया है। वैसे 'राम' शब्द की निष्पत्ति 'रमु क्रीडायाम्' धातु से कर्ता में घञ् प्रत्यय लगा कर की गई है। इसलिए इसका अर्थ 'तम' प्रकरणानुसार ही मानना पडेगा क्योंकि मन्त्र में अर्थ है- उगता हुआ सूर्य (रात्रि के) तम (=राम) को दबा देता है। सम्भव है कि रात्रि में अन्य प्रकार की क्रीडाएं की जाती हों (रमतेऽस्मिन्निति रामः (देखें उणादिकोष में 'रामठम्' (१।१०१) पर महर्षि की व्याख्या)), इसलिए राम का अर्थ यहाँ इस प्रकार लिया गया हो! उपर्युक्त धातु से ही **"ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ।।३।१।१४०।।"** अष्टाध्यायी के इस सूत्र से ण प्रत्यय कर्म में भी कहा गया है। घञ् और ण- इन दोनों से 'राम' के अर्थ बने- जो क्रीडा करे, प्रसन्न हो, अथवा जिससे क्रीडा की जाए, आनन्द मिले (सायण के भाष्य से सम्भवतः तीसरा अर्थ है-जिस (काल/अवस्था) में क्रीडा की जाए)। 'जिससे आनन्द मिले'- इस अर्थ से 'राम' का 'सुन्दर' अर्थ भी बनता है। इस प्रकार रामचन्द्र जी स्वयं प्रसन्न रहने से, अतीव नयनाभि 'राम' होने से और अपने माता-पिता, प्रजा, आदि को सन्तोष देने वाले होने से 'राम' कहलाए गए।

२) <u>सीता</u> - इस पद का उल्लेख वेदों में 'राम' से कुछ अधिक प्राप्त होता है। यथा- **अर्वाची सुभगे भव सीते...।। ऋक्०४।५७।६।।** - जिसके भाष्य में महर्षि दयानन्द लिखते हैं- "हलादिकर्षणावयवायोनिर्मिता - हल आदि के खींचने वाले, लोहे के अवयव से बनाई गई सीता" अर्थात् हल से कुरेदी गई लकीर। इसी अर्थ से हम सब परिचित हैं, और सीता के नामकरण में भी यह किंवदन्ति है कि राजा जनक पुत्रेष्टि की तैयारी के लिए यज्ञक्षेत्र को स्वच्छ करने के लिए जब हल चला रहे थे,

तब अकस्मात् हल से बने गड्ढे में सीता जी के दर्शन हुए। इसी अर्थ का पोषक है शतपथ ब्राह्मण का यह वचन - **"बीजाय वा एषा योनिष्क्रियते यत् सीता।।शतपथ० ७।२।२।५।।"** अर्थात् बीज के लिए किया गया गड्ढा सीता कहलाता है। अन्य कुछ उल्लेख और उन पर स्वामी जी का भाष्य इस प्रकार है।-

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु ...।।ऋक् ०४।५७।७।।- "भूमिकर्षिकां- भूमि जुताने वाली वस्तु" अर्थात् फाल।

घृतेन सीता मधुना समज्यताम् ...।।

यजु० १२।७०।।- "सायन्ति क्षेत्रस्थलोष्ठान् क्षयन्ति यया सा काष्ठपट्टिका" अर्थात् जिस लकडी की पट्टी या फाल से खेत में स्थित ढेलों को तोडा जाता है, वह।

'षो अन्तकर्मणि' धातु से औणादिक क्त प्रत्यय (उणा० २।६०) और टाप् लगकर 'सीता' की निष्पत्ति हुई है। सम्भवतः, यह भूमि को बीजारोपण के लिए तैयार करने में अन्तिम सोपान होता है, इसलिए जोतने अथवा फाल अथवा जुती हुई लकीर के अर्थ में इसका प्रयोग होता है, जिस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों में दिया गया है। उणादिकोषः में महर्षि की व्याख्या- **"स्यति कर्मसमाप्तिं करोतीति सीता क्षेत्रे हलेन कृता रेखा स्त्रीविशेषो वा (२।६०)"** (अर्थात् कर्म की समाप्ति करता है, इस कारण 'सीता से अभिलक्षित, अथवा खेत में हल से की गई रेखा अथवा स्त्रीविशेष का नाम) से भी यही अर्थ ध्वनित होता है।

उपर्युक्त मन्त्रों में कृषि में भूमि को जोतने से अच्छी फसल प्राप्त करने के साथ-साथ, स्त्रियों को विद्यादि से भूषित करने पर समाज की उन्नति में सहभागी बताया गया है। इस प्रकार 'सीता' खेती और स्त्रियों के लिए विद्यादि, दोनों प्रकार से मनुष्योन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

शतपथ ब्राह्मण तो यहाँ तक कहता है-

प्राणा वै सीताः ।।शतपथ० ७।२।३।३।। - प्राणों का ही अपर नाम सीता है। अवश्य ही रामचन्द्र जी इस अर्थ से सहमत होते! क्योंकि सीता अन्न उगाने में महत्वपूर्ण है, और अन्न से प्राणरक्षा होती है, इसलिए यहाँ ब्राह्मण ने, अपनी विशिष्ट विवक्षा-पद्धति के अनुसार, सीता को ही प्राण कह दिया।

३) भरतः - यह शब्द तो स्पष्टतः 'डुभृञ् धारणपोषणयोः से निष्पन्न हुआ है, औणादिक अतच् (उ० ३।११०) प्रत्यय लगाकर और इसी के अनुसार महर्षि ने वेदमन्त्रों में अर्थ भी किए हैं-

त्वमीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ...

।।ऋक्० ६।१६।४।।- "धर्ता पोषकः (सज्जनः)"।

तमीळत प्रथमं ...ऊर्जः पुत्रं भरतं ...

।।ऋक्० १।९६।३।। - "पालितव्यस्य राज्यस्य - सेवने योग्य राज्य" - यहाँ महर्षि ने 'भरत' को णिजन्त लेकर उसे राज्य बताया है।

और अन्य भी अनेक उल्लेख वेदों में प्राप्त होते हैं। ब्राह्मणादि ग्रन्थों में भी इस शब्द के कुछ रोचक उल्लेख मिलते हैं, यथा-

भरताः ऋत्विङ्नाम ।। निघण्टुः ३।१८।।- ऋत्विजों के अर्थ में।

प्रजापतिर्वै भरतः स हीदं सर्वं बिभर्ति।।

शतपथ० ६।८।१।१४।। - प्रजापति (परमात्मा) ही भरत है क्योंकि वह इन सब (ब्रह्माण्ड में सब भूत व जन्तुओं) का भरण-पोषण करता है।

अग्निर्वै भरतः स वै देवेभ्यो हव्यं भरति ।।कौषीतकी० ३।२।। - अग्नि ही भरत है क्योंकि वह देवों (वायु आदि भूतों) के लिए हवि धारण करती है।

प्राणो भरतः।। ऐतरेयब्राह्मणम् २।२४।। - प्राण भरत हैं (क्योंकि वे जीव को शरीर में धारण करते हैं)।

भरतः आदित्यः।। निरुक्तम् ८।१४।। - भरत आदित्य (सूर्य) है (क्योंकि वह जीवों को धारण व पोषित करता है)।

एष वो भरतो राजा।।

तैत्तिरीयसंहिता १।८।१०२।। - निश्चय से भरत राजा है (पुनः क्योंकि वह प्रजा का धारण-पोषण करता है)।

"भृमृदृशि० (१।११०)" - उणादिकोष में महर्षि ने व्याख्या की है- "भरति पुष्णातीति भरतः राजभेदो नटो रामानुजो वा" अर्थात् पोषण करने वाले को 'भरत' कहा जाता है, राजविशेष, नट और राम के अनुज के लिए भी यह प्रयुक्त होता है।

संक्षेप में, यह शब्द परमात्मा, राजा, प्रजा, राज्य, सेनापति, सज्जन, विद्वान, अग्नि, आदित्य, आदि, किसी भी धारक या पोषक या धारणीय/पोषणीय वस्तु के अर्थ में लिया गया है। राजा के लिए यह अत्यन्त सरल, सुन्दर व अर्थपूर्ण नाम है।

(आजकल कुछ लोगों ने हमारे राष्ट्र का नाम 'भारत' के अर्थ 'भायां रतः' अर्थात् 'ज्ञानादि आभा में रत', इस प्रकार किए हैं। वेदों में 'भारत' शब्द धर्ता अथवा 'भारती=वाणी' का वेत्ता/धर्ता अर्थ में आया है। महाभारत ग्रन्थ, जिससे इस राष्ट्र को यह नाम दिया गया, उसमें चक्रवर्ती राजा भरत की सन्तति होने के कारण कौरवों, पाण्डवों, आदि, के लिए और उनके राष्ट्र के लिए इस पद का प्रयोग किया गया है। सो, 'भायां रतः' उन लोगों की ही कल्पनामात्र है जिन्होंने ये अर्थ किए हैं! इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।)

४) <u>दशरथः -</u> आश्चर्यजनक है कि यह शब्द भी ऋग्वेद में प्राप्त हो जाता है-

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः ...

।। ऋक्० १।१२६।४।। - "दश रथाः यस्य सेनेशस्य - दश रथों से युक्त सेनापति- दशों दिशाओं में रथवाला (चक्रवर्ती राजा वा सेनापति)"। इस प्रकार 'दशरथ' भी राजा के लिए बहुत ही उपयुक्त अभिधान है।

५) <u>लक्ष्मणः -</u> यह पद मुझे वेदों में प्राप्त नहीं हुआ। सम्भव है मेरी खोज पूर्ण न हो। तथापि उणादिकोष में पाणिनि ने इसकी निष्पत्ति दी है-

"लक्षेरट् मुट् च ।।३।७।।", जिसकी व्याख्या में महर्षि लिखते हैं- "लक्ष्मणं चिह्नं नाम वा रामभ्राता लक्ष्मणो वा" अर्थात् 'लक्ष्मण' चिह्न अथवा नाम के अर्थ में है, राम के भाई का नाम भी। क्या सम्भव है कि लक्ष्मण जी के कोई तिल अथवा कोई अन्य जन्मचिह्न हो जिसके कारण इन्हें यह नाम दिया गया?!

६) <u>कौशल्याः -</u> यह शब्द भी मुझे वेदों में प्राप्त नहीं हुआ। 'कोशल' राज्य से होने के कारण (कोशलदेशे भवा छय), दशरथ की बड़ी रानी का यह अपर नाम था। 'कोशल' राज्य के अर्थ में 'कुशल' शब्द से निष्पन्न हुआ है। **"वृषादिभ्यश्चित् (१।१०६)** - उणादिकोष में महर्षि की व्याख्या इस प्रकार है- "कोशति श्लिष्यति कोशति व्यवहर्तुं जानातीति वा कुशलः निपुणः कुशलं क्षेममिति वा। बाहुलकाद्गुणे कोशलः इति देशभेदो वा" अर्थात् (धनादि से) जुड़ने अथवा सम्यक् व्यवहार जानने वाले निपुण व्यक्ति को, कुशलता को अथवा रक्षा को 'कुशल' कहा जाता है और 'कोशल' देशविशेष का नाम है। सम्भवतः, कुशल व्यक्तियों अथवा धन-धान्य से सम्पन्न सुरक्षित राष्ट्र को इंगित करने के लिए इस नाम का प्रयोग हुआ है।

इन संकेतों से हमें ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज नाम रखने के लिए वेदों की संहिताओं को ही हाथ में उठाया करते थे। उस समय वेदों का पठन-पाठन भी अवश्य ही अधिक होता होगा, इसलिए सभी उनमें आए विभिन्न पदों और उनके अर्थों से भली प्रकार परिचित होंगे। तब फिर जब वे कोई अभिधान रखते थे, तो वह बहुत ही अर्थपूर्ण और उपयुक्त होता था। आज हम केवल उनका अनुकरण करके वे नाम रख लेते हैं, उन नामों का व्यक्तियों से सम्बन्ध आवश्यक नहीं होता। ऐसा प्राचीन आर्यवर्त में नहीं हुआ करता था और शब्दों के अर्थ समझकर ही व्यक्ति के लिए उपयुक्त नाम रखा जाता था। जैसे वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद मुनि के नाम का अर्थ 'कणों=धान के दानों का खाने वाला है। ऐसा प्रसिद्ध है कि खेतों में दाने बीनकर खाने के कारण उनका यह नाम पड़ गया। इस प्रकार प्राचीन नामों में अनेक रोचक रहस्य छिपे होते हैं!

❑❑

इतिहास की कलाकारी

(राजेशार्य आट्टा,मो0:-०६६६१२६१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! समय गतिशील है। बीता हुआ कल दोबारा नहीं आएगा। अतः हम केवल अतीत की घटनाओं के लिए गौरवान्वित या शर्मिन्दा न हों। गौरवशाली प्रसंगों की पुनरावृत्ति करने और लज्जित करने वाले प्रसंगों की पुनरावृत्ति से बचने से ही वर्तमान व भविष्य सुखी हो सकता है। इतिहास के प्रसंगों को (किसी भी भावना से) छिपाने से या दूसरी तरह प्रस्तुत करने से वर्तमान भ्रमित होकर भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। अतीत न सारा अच्छा होता है और न सारा बुरा होता है। प्रख्यात लेखिका महादेवी वर्मा के शब्दों में कहूँ तो- **"पुरानी पीढ़ी ने बहुत गलतियाँ की हैं। उसमें दोष भी हैं, किन्तु युवा पीढ़ी इन दोषों को अपने ऊपर बोझ न बनने दे। समुद्र में लवण ही लवण है, किन्तु बादल उसमें से केवल मधुर जल ही लाता है।"** कवयित्री का यह संदेश सभी देशवासियों के लिए है, केवल हिन्दु या केवल मुस्लिम के लिए नहीं। पर प्रो० सतीशचन्द्र जैसी विचारधारा के कुछ लेखक वर्तमान के भारतीय मुस्लिमों को यह अहसास ही नहीं होने देना चाहते कि विदेशी मुस्लिम शासकों ने अतीत में बहुत सी गलतियाँ भी की हैं। इससे जहाँ मुस्लिमों का कट्टरवाद बढ़ा, वहीं हिन्दु भ्रमित होकर आतंकवादियों की भी जय बोलने लगे। दिल्ली की बड़ी-बड़ी यूनिवर्सिटियों में देशद्रोही गतिविधियाँ होना ऐसे ही साहित्य की देन हैं। और ऐसा साहित्य (पाठ्यक्रम) विद्यार्थियों तक पहुँचाने में राजनीति की भी भूमिका रही होगी, अन्यथा ऐसा अपराध करने वालों के समर्थन में देश की बड़ी पार्टी के बड़े नेता खड़े दिखाई न देते। यदि औरंगजेब जैसे अत्याचारी को 'जिन्दा पीर' और 'सन्त' न पढ़ाया जाता तो देश के संसद भवन पर हमला करने वाले आतंकवादी को फाँसी से बचाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय आधी रात न खुलवाया जाता।

प्रो० सतीशचन्द्र ने 'मध्यकालीन भारत' में प्रताप, शिवाजी, गोविन्दसिंह, राजसिंह, गोकुला, छत्रसाल दुर्गादास आदि किसी भी वीर के लिए यह नहीं लिखा कि वे देशभक्त थे या उन्होंने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए कुर्बानी दी। इसके विपरीत लिखा- "तुर्कों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में देश की मंगोलों के आक्रमण से रक्षा की थी। बाद में भी २०० वर्षों तक मुगल भारत की पश्चिमी सीमा को विदेशी आक्रमणों से बचाने में सफल रहे।" (पृ० ३३६)

समीक्षा- तो क्या हम उस काल के सैकड़ों वर्ष तक मुसलमानों (तुर्कों या मुगलों) के अधीन नहीं रहे? तुर्कों या मुगलों ने देश की रक्षा की या अपने साम्राज्य की? जबकि देशी-विदेशी लेखकों, इतिहासकारों का लेख बताता है कि तुर्क, मंगोल या मुगल सब विदेशी आक्रमणकारी लुटेरे थे, जो अपनी बर्बरता, निर्दयता व धार्मिक उन्माद के कारण भारत को लूटने के लिए आपस में संघर्ष कर रहे थे। बाद में जो तुर्क या मुगल हमारी फूट के कारण यहाँ राज्य प्राप्त करने में सफल हुए, वे यहीं बस गये, क्योंकि उनका अपने मूल देश से सम्बन्ध टूट चुका था। जिनका नहीं टूटा, वे लूट का माल लेकर पुनः अपने देश लौट गये थे। चाहे वह महमूद गजनवी हो, तैमरलंग हो, चंगेज हो, नादिरशाह हो या अहमदशाह अब्दाली हो।

यह कैसी हास्यास्पद बात है कि तुर्क और मुगलों ने भारत देश की रक्षा की! देश को तो पराधीन रहना ही था, फिर शासन चाहे तुर्कों का हो या मंगोलों का। इससे क्या फर्क पड़ता है। अत्याचारी तो दोनों ही थे।

इन्हें देश का रक्षक कहने से पहले इन बिन्दुओं पर विचार कर लेना चाहिए-

१. मुस्लिम काल की पराधीनता में क्या कोई भी

ऐसा मुस्लिम शासक हुआ, जिसे भारत की प्रजा (हिन्दू) ने प्रसन्नता से अपना राजा स्वीकार किया हो?

२. इस काल में क्या एक भी ऐसा मुस्लिम राजा हुआ, जो भारत की परम्परा (पिता का बड़ा पुत्र राजा बनता है) के अनुसार पिता व भाइयों के विरोध के बिना राजा बनाया गया हो?

३. क्या एक भी ऐसा मुस्लिम राजा हुआ, जिसे यहाँ के हिन्दुओं के विरोध का सामना न करना पड़ा हो?

४. क्या एक भी ऐसा मुस्लिम राजा हुआ, जिसने अपनी हिन्दू प्रजा को बिना स्वार्थ के समानता का दर्जा दिया हो?

५. क्या एक भी ऐसा मुस्लिम राजा हुआ, जिसने (इस देश के धन व स्त्री को छोड़कर) इस देश की संस्कृति व सभ्यता को स्वकार किया हो?

६. इसके विपरीत सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुओं को 'जजिया' कर देना पडा, कयोंकि वे मुस्लिम शासक के राज्य में जीवित (हिन्दू रहकर) थे। फिर समाज में समरसता कैसे होती?

भारत के उन तथाकथित रक्षकों ने भारत की प्राचीन पहचान को मिटाने का हर सम्भव प्रयास किया- मन्दिर तोड़े, उन पर मस्जिदें बनाईं, यहाँ की हिन्दू जनता को मुसलमान बनाया, गो-हत्या की,. स्त्रियों को लूटा, ग्रन्थों को जलाया, नगरों के नाम बदले, भवनों (किलों, महलों) पर कब्जा कर अपनी मोहर लगाई। यदि फिर भी वे देश के रक्षक हैं, तो विनाशक की क्या परिभाषा होगी? यह केवल अतीत में ही हुआ होता, तो इसे काल्पनिक माना जा सकता था, पर कुछ अपवादों को छोड़कर इस्लाम का अलगाववाद आज भी समय- समय पर प्रकट होता रहता है। इस सत्य को जीवनभर सेकुलर बनकर वैदिक संस्कृति का विरोध करने वाले लेखक खुशवन्त सिंह के शब्दों में पढ़िये-

"दुनियाभर के मुसलमान गैर मुसलमानों के साथ तालमेल बिठाने में नाकामयाब रहे हैं और हिंसा पर उतर आते हैं। अगर उनके पास कोई गैर-मुसलमान न हो तो वे एक-दूसरे के खिलाफ लड़ने लगते हैं, यह केवल सुन्नी बनाम शिया ही नहीं है बल्कि सुन्नी बनाम सुन्नी और शिया बनाम शिया भी है। ...वे गैर-मुसलमानों को अपनी हालत (गरीबी) के लिए जिम्मेदार मानते हैं। ...और काल्पनिक शत्रुओं के साथ लड़ते रहते हैं। (पंजाब केसरी, २८ अप्रैल २०१२)

इस्लाम के इस अलगाववाद के मूल कारण पर प्रकाश डालते हुए श्री वी.एस.नॉयपॉल ने अपनी पुस्तक 'बियोंड बिलीफ' यानी आस्था से परे की भूमिका में लिखा है- "इस्लाम अपने मूल में एक अरब संप्रदाय है। वह प्रत्येक मुस्लिम, जो अरबी नहीं है, एक कन्वर्टेड (धर्मान्तरित) व्यक्ति ही कहा जा सकता है। इस्लाम आत्मा की आवाज या निजी आस्था मात्र का विषय नहीं है। उसकी माँगें साम्राज्यवादी हैं। कन्वर्टेड व्यक्ति की विश्व दृष्टि ही बदल जाती है। उसकी पवित्र भाषा उसके देश की भाषा नहीं, अपितु अरबी हो जाती है। इतिहास के बारे में उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। वह जो कुछ अपना है उसे नकार कर, चाहे-अनचाहे एक अरब कहानी का हिस्सा बन जाता है।" (पाञ्चजन्य विशेषांक, २००१)

अब एक नजर उस विषय पर डालते हैं कि तुर्क, मुगल आदि ने किसकी रक्षा की - भारत देश की या अपने साम्राज्य की, पृथ्वीराज चौहान को हराकर ११९२ में मुहम्मद गोरी भारत में मुस्लिम राज स्थापित करने में सफल होकर देश के अन्य हिन्दू राजओं के विरुद्ध लड़ा था। उसके सेनानायकों ने विश्वविद्यालयों में पढ़ने-पढ़ाने वाले विद्यार्थियों और अध्यापकों को काट डाला व पुस्तकालय जला दिये। बाद में जब उसके दास कुतुबुद्दीन ऐबक का दामद इल्तुतमिश दिल्ली का राजा था, तो १२२१ ई० में मंगोलों के भारत पर आक्रमण का खतरा उत्पन्न हुआ, पर उसने आक्रमण से देश को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया। वैसे इल्तुतमिश ने दिल्ली सुल्तान कुतुबुद्दीन (अपने स्वामी) के बेटे से युद्ध कर राज्य छीना था।

बलबन के काल में मंगोलों ने दिल्ली तक प्रहार

किये और बलबन का बेटा मुहम्मद भी मारा गया (१२८५ ई०)। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि १६ वर्ष प्रधानमंत्री रहकर बलबन ने अपने राजा (दामाद) नासिरुद्दीन मुहम्मद को विष देकर और उसके पुत्रों को भी मारकर राज्य हथियाया था।

जलालुद्दीन खिलजी के काल में मंगोलों ने पुनः (१२६२ ई०) आक्रमण किया। जलालुद्दीन ने मंगोलों के साथ सन्धि कर अपना राज्य बचाया। क्योंकि यह राज्य उसने बलबन के पौत्र कैकुबाद व उसके छोटे शिशु शमसुद्दीन कयूमर्स का वध करवाकर प्राप्त किया था।

अलाउद्दीन खिलजी के समय (१२६६ व १३०३ ई०) में मंगोल पुनः दिल्ली तक चढ़ आये थे। अलाउद्दीन ने उनका मुकाबला कर अपने साम्राज्य को बचाया, क्योंकि यह राज्य उसने अपने चाचा व ससुर जलालुद्दीन खिलजी का सिर काटकर, उसके पुत्रों-अर्कली खाँ, कद्र खाँ, अहमदचप तथा दामाद उलुग खाँ आदि को अन्धा करके व मालिक जहाँ सहित जेल में डालकर प्राप्त किया था।

मुहम्मद बिन तुगलक के काल में मंगोलों ने पुनः (१३२७-२६) आक्रमण किये, तो सुल्तान ने उनसे युद्ध करने की अपेक्षा उन्हें धन देकर लौटा दिया और अपने राज्य की रक्षा की, क्योंकि यह राज्य उसने अपने पिता को मारकार प्राप्त किया था।

ये मंगोल खिलजी के काल में मुसलमान बना लिये गये थे, जो बाद में मुगल भी कहे जाने लगे। तैमूर लंग ऐसा ही मुगल था, जो १३६८ ई० में लूट, आगजनी और मारकाट मचाता हुआ दिल्ली पर चढ़ आया, तो दिल्ली का तुगलक शासक महमूद दिल्ली को जलने, मरने और नष्ट होने के लिए छोड़कर गुजरात की ओर भाग गया। नरपिशाच तैमूर ने कई दिन तक दिल्ली में लूटमार व नरसंहार किया। हिन्दुओं के सिर कटवाकर उनके मीनार खड़े किये गये, जो बचे उन्हें मुसलमान व गुलाम बनाकर मेरठ, हरिद्वार, कांगड़ा व जम्मू को भी लूटकर वह चला गया और भारत के रक्षक (?) बने तुर्क देखते रह गये।

बाद में इसी तैमूर का वंशज बाबर दिल्ली पर चढ आया, तो दिल्ली का शासक इब्राहीम लोदी उसका सामना करता हुआ पानीपत के मैदान में (१५२६ ई०) मारा गया और भारत में मुगल वंश की नींव पड़ गई। यहाँ के हिन्दू राजाओं के साथ हुई लड़ाई में मारे गये हिन्दुओं के सिर कटवाकर उसने भी तैमूर की मीनार बनवाने वाली प्रथा का पालन किया; हिन्दुओं को काफिर लिखा या लिखवाया, हिन्दुओं के विरुद्ध जेहाद का नारा देकर व युद्ध जीतकर 'गाजी' बना। तारी-ए-सलातीन-ए-अफगान के पृ० ३४ के आधार पर दामोदर लाल गर्ग ने 'अकबरनामा' में लिखा है कि बादशाह बाबर ने चन्देरी दुर्ग पर अधिकार करते हुए सभी स्त्रियों को कैद करवा लिया। राजा (मेदिनीराव) की दो खूबसूरत लडकियाँ थीं, जिनमें से एक कामरान को तथा दूसरी शहजादा मुहम्मद हुमायुँ को सम्भलवा दी, शेष औरतों को सेना के सरदारों को बाँट दिया।

भारत से भगाए गए बाबर के बेटे हुमायुँ ने पुनः दिल्ली पर अधिकार कर लिया (जुलाई १५५५ ई०), पर भारत के रक्षक उसे रोक नहीं पाए। अकबर से लेकर औरंगजेब तक तो मानसिंह, जयसिंह, जसवंतसिंह, जैसे हिन्दू ही इस देश की बाह्य आक्रमणों से रक्षा करते रहे। मानसिंह ने ही अकबर के लिए काबुल जीता था, जसवंतसिंह को औरंगजेब ने जमरूद भेज कर विद्रोह शान्त करवाया था (१६७१ ई०)। कई भयंकर लडाइयों के बाद अफगानों का यह विद्रोह दबाया जा सका।

१७३६ ई० में नादिरशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई की, तो विलासी मुगल शासक मुहम्मदशाह रंगीला बेचारा बनकर उसके आगे घुटने टेक गया। नादिशाह ने सात दिन तक दिल्ली में कत्ले आम मचवाया और लूटमार की। अपार धन- संपत्ति, तख्ते ताउस व कोहेनूर हीरा आदि लेकर नादिरशाह ईरान लौट गया और देश का रक्षक (?) देखता रह गया।

मुहम्मदशाह के वंशजों के काल में अहमदशाह अब्दाली ने पाँच-छह बार भारत पर आक्रमण किये, लूट-मार की। पर ये नाम मात्र के बादशाह कुछ नहीं कर पाये और

शेष पृष्ठ २४ पर

आर्यसमाजः राष्ट्रचेतना का बीजारोपण

(रामनिवास 'गुणग्राहक',आर्यसमाज श्रीगंगानगर,मो0ः-९०७९०३९०८८)

आर्यसमाज मानवता को समर्पित एक ऐसा सुधारवादी आन्दोलन है, जिसका स्पष्ट प्रभाव मानव जीवन के धार्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्रों में साक्षात् अनुभव किया जा सकता है। धार्मिक क्षेत्र की बात करें तो आर्यसमाज की मान्यताओं को लेकर बाइबिल और कुरान तक के अनुवादों में अन्तर देखा जा सकता है। सामाजिक क्षेत्र को लें तो देश और दुनियाँ की जाति- वाद-नस्लवाद जैसी कट्टर सोच को लेकर नारी की स्थिति तक में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन दिखते हैं, वे आर्यसमाज की स्थापना (१८७५) से पहले के काल खण्ड में उतने प्रखर नहीं दिखते। वैसे तो इन क्षेत्रों में आर्यसमाज के योगदान को लेकर भी लिखा जा सकता था, मगर आज देश चुनावी वातावरण से ओत प्रोत है। ऐसे में आर्य- समाज की राष्ट्रीय चेतना पर लिखना समय की माँग प्रतीत होती है। वैसे तो चुनावी वातावरण कभी सहज व सौम्य नहीं रहा, मगर जब राजीव गाँधी के हत्यारों को जेल से निकलवाने, देशद्रोह के कानून को समाप्त करने, सैनिकों के हाथ बाँधने के प्रयासों से लेकर काश्मीर में अपना प्रधानमंत्री राष्ट्रपति बनाने जैसे विषैले स्वर कानों से टकराने लगें तो हर देशवासी को सचेत हो जाना चाहिए। देश की बहुदलीय राजनीति आज अनचाहे दो दलों में बँटकर अधिक घातक संकेत देने लगी है। संभवतः ये चुनाव देश और दुनियाँ के लिए सर्वाधिक संवेदनशील बनकर रह गये हैं। ऐसी स्थिति में आर्यसमाज की राष्ट्रीय चेतना को लेकर चर्चा करना राष्ट्रीय कर्तव्य बन जाता है। सर्वप्रथम तो पाठक यह जान लें कि काँग्रेस की स्थापना से दस वर्ष पूर्व १८७५ में आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने स्वराज्य का नारा दिया थ। कांग्रेस ने जिस स्वराज्य शब्द को १९३० में आकर स्वीकार किया, उसे लेकर १८७५ में एक संन्यासी लिखता है- **"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। मत मतान्तर के आग्रह से रहित अपने-पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशीयों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"**

सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता के बाद महारानी विक्टोरिया ने भारतीय प्रजा की सन्तुष्टि के लिए जो संदेश भेजा था, जिन्होंने वह संदेश पढा है, वे जानते हैं कि महर्षि दयानन्द का यह उद्घोष शब्दशः उसका प्रतिउत्तर है। महर्षि दयानन्द की राष्ट्र चेतना का सबसे बडा प्रमाण है उनके अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का छटा समुल्लास। छटे समुल्लास के माध्यम से महर्षि ने वेद और प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाणों के सहित भारत की प्राचीन वैदिक राजनीति के सभी अंगों का सांकेतिक वर्णन करके मानो भारतीयों के मन-मस्तिष्क में अपने राज्य का सपना बसा दिया था। इतना ही नहीं परमात्मा की भक्ति भाव से ओतप्रोत ग्रन्थ 'आर्याभिविनय' के मंत्र- **'इषे पिन्वस्वोर्जे ..... विशं धारय'** (यजु० ३८-१४) के भाष्य में महर्षि लिखते हैं- **"... अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। "** ऐसे शतशः प्रमाण आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के मनोभावों को उनके ग्रन्थों में लिखे उद्धरणों के द्वारा प्रकट करके अब उनके राष्ट्रीय चेतना जगाने वाले कार्यों पर दृष्टि डालते हैं। महर्षि दयानन्द स्वदेशी

वस्तुओं के ही प्रबल पक्षधर थे। एक बार उनके भक्त ठाकुर रोशन सिंह का पुत्र माधोसिंह विदेशी रंग-ढंग के वस्त्र पहनकर आया। ऋषि दयानन्द ने उसके पिता द्वारा पहने स्वदेशी वस्त्रों की ओर संकेत करते हुए कहा- "देखो! तुम्हारे पिताजी ने स्वदेशी कपड़े पहने हुए हैं कितने सुन्दर लग रहे हैं? क्या तुम इन विदेशी कपड़ों में अपने पिताजी से अधिक अच्छे लग रहे हो? माधोसिंह! हमारा राष्ट्रीय गौरव स्वदेशी वस्तुओं में ही है।" ऋषि दयानन्द के ऐसे ही विचारों से प्रभावित होकर सन् १८७६ की १४ अगस्त को आर्यसमाज लाहौर के कार्यकर्त्ताओं ने विदेशी वस्तुओं को जलाकर स्वदेशी के प्रयोग का संकल्प लिया था। तब कांग्रेस ए. ओ.ह्युम के मन मस्तिष्क में ही आकार ले रही थी।

हिन्दी भाषा को राजभाषा बनाने के लिए ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज ने १८८२ में ही आन्दोलन खड़ा कर दिया था। जब अंग्रेज सरकार ने हण्टर का गठन करके देश की राजभाषा को लेकर भारतीय जन-मन को टटोलना चाहा, तो उस अवसर पर महर्षि दयानन्द ने फर्रुखाबाद के सुन्दर लाल जी को पत्र लिखकर कहा कि वे हिन्दी के पक्ष में अधिकाधिक व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर आयोग के पास भेजें। महर्षि ने लिखा कि यह काम एक के करने का नहीं है, सब मिलकर प्रयास करें। ऋषि १८८२ में लिखते हैं कि हिन्दी (जिसे ऋषि दयानन्द आर्य भाषा कहते थे।) अगर राजभाषा बन गई तो समझो सब सुधारों की नींव पड़ गई! लगे हाथों नमक आन्दोलन की भी बात कर लें। सन् १८७५ में लिखे ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि लिखते हैं- **"नून के बिना तो दरिद्र (गरीब) का भी निर्वाह नहीं होता । ऐसे में नमक पर कर लगाना उनके लिए दण्ड के तुल्य है, नमक पर कर नहीं होना चाहिए।"** ध्यान रखने वाली बात यह है कि ये एक वीतराग संन्यासी के शब्द हैं। भाषा संयत है लेकिन भाव सशक्त हैं।

एक चौंका देने वाला खुलासा करने की इच्छा को दबाना उचित नहीं रहेगा। हमारी सरकार ने श्वेतक्रान्ति और हरितक्रान्ति के नाम से दो महत्वाकांक्षी योजना जनहितार्थ चलाई। कहने की आवश्यकता नहीं कि श्वेत क्रान्ति का उद्देश्य दुग्ध उत्पादन बढाना और हरित क्रान्ति का फसल या अन्न उत्पादन था। ये दोनो योजनाएं कितनी आवश्यक और उपयोगी हैं, यह सब जानते हैं। पाठक आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकते कि महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन काल (१८८३ से पहले) में एक 'गौकृष्यादिरक्षिणी सभा' बनाई थी। इस सभा का अपना पूरा व्यापक संविधान है, स्पष्ट उद्देश्य है और सटीक कार्य योजना। संभव है उसका स्वरूप वर्तमान की योजनाओं से पृथक हो, मगर राष्ट्र के भरण- पोषण की दिशा में एक धार्मिक सुधारक संन्यासी की दूरगामी सोच की प्रशंसा किए बिना भला कौन रह सकता है? एक संन्यासी जो धर्मग्रन्थों के मर्मों को अपने जीवन में सजीव रूप में ढालते हुए पौराणिक धर्माचार्यों के साथ लम्बे जटिल शास्त्रार्थ करता है, मौलवी और पादरियों के साथ उनके धर्मशास्त्रों पर आधिकारिक रूप से संवाद करके उन्हें निरुत्तर करता है और साथ-साथ राष्ट्र की स्वाधीनता से लेकर राष्ट्र के भरण-पोषण की योजनाएँ बनाता और चलाता रहता है। इतना ही नहीं अपने जर्मन देशवासी भक्त डब्ल्यू० डी० वाइज के साथ पत्राचार करके वह निर्लिप्त साधु देश के नवयुवकों को कला कौशल और तकनीकी शिक्षा दिलाकर देश में कारखाने चलाने की दिशा में भी प्रयास करता रहता है। देवदुर्विपाक से जोधपुर में विष देने से उनकी असामयिक मृत्यु न हुई होती तो हमारे नवयुवक कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही जर्मन से तकनीकी शिक्षा पाकर देश की दशा और दिशा ही बदल चुके होते।

अपने प्रारंभिक दिनों में देश की सामाजिक बुराइयों और धार्मिक अंधविश्वासों को मिटाने के साथ- साथ

शेष पृष्ठ २७ पर

"आर्यसमाज न होता तो ईश्वर-जीवात्मा-प्रकृति के सत्य स्वरूप का निश्चय न हो पाता"

-(मनमोहन कुमार आर्य, देहरदून,मो0:-०९४१२६८५१२१)

आर्यसमाज संसार का एक धार्मिक एवं सामाजिक संगठन होने सहित वेद प्रचार आन्दोलन भी है। राजनैतिक विचारों की दृष्टि से इसके अपने विचार हैं जो वेदों एवं ऋषियों के अनेक ग्रन्थों सहित रामायण एवं महाभारत से पोषित होते हैं। आर्यसमाज से पूर्व पौराणिक सनातनी मत सहित बौद्ध, जैन, ईसाई एवं मुस्लिम आदि अनेक मत संसार में विद्यमान थे। मतों की कुल संख्या पर विचार करें तो इनकी संख्या एक सौ से भी अधिक थी। इतने मतों के होते हुए भी सभी मतों की ईश्वर, जीव व प्रकृति विषयक मान्यतायें वा सिद्धान्त भिन्न-भिन्न थे। इन सबने कभी सोचा नहीं और न प्रयास किया कि आपस में चर्चा कर तर्क व युक्ति से ही ईश्वर व जीवात्मा आदि विषयक मान्यताओं में एक मत हो जायें। जिसका जो सिद्धान्त सत्य है, उसे अन्य स्वीकार कर लें और जिनके जो सिद्धान्त व कथन गलत हैं, वह उसका सुधार करते हुए गलत सिद्धान्त का त्याग कर दे। सभी मत व मतान्तरों के आचार्य व अनुयायी अपने मतों की परीक्षा नहीं करते। वह सोचते हैं कि परम्परा से जो सत्य व असत्य चला आ रहा है, वही सत्य है। इन लागों ने अपने मतों की लिखित मान्यताओं को ब्रह्म वाक्य व वेदवाक्य के समान मान हुआ है। महर्षि दयानन्द के आने के बाद लोगों की चिन्तनधारा में परिवर्तन आया। उन्होंने बताया कि मनुष्य अल्पज्ञ होता है। अल्पज्ञ की बातें भी पूर्ण सत्य न होकर सत्यासत्य से मिश्रित होती हैं। उन्होंने यह भी बताया कि मत-मतान्तरों के सभी आचार्य मनुष्य होने से अल्पज्ञ थे इसलिए उनकी मान्यताओं में अशुद्धि, न्यूनता, व त्रुटि होना सम्भावित है। इसके अनेक उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में संसार में प्रचलित जिन मत-मतान्तरों की समीक्षा की है उससे इस तथ्य की पुष्टि हुई है। कोई मत यह दावा नहीं कर सकता कि उसके मत में सभी बातें सत्य हैं तथा असत्य किंचित भी नहीं है। यदि ऐसा होता तो उन्होंने ऋषि दयानन्द की समालोचना को सहर्ष स्वीकार कर उनके प्रश्नों, शंकाओं व आरोपों का समाधान किया होता। ऐसा नहीं किया गया, जिससे वस्तुस्थिति स्वयं स्पष्ट है।

आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द (१८२५-१८८३) ने एक सनातनी पौराणिक परिवार में जन्म लिया था जहाँ मूर्तिपजा होती थी और पुराणों का सम्मान किया जाता था। ऐसा कोई विद्वान् नहीं था जिसने कभी पुराणों की सत्यता की परीक्षा की हो और उनकी बातों को युक्ति व तर्कसंगत सिद्ध किया हो। पुराणों की बातों पर कभी शंका भी नहीं की गई थी। ऐसा ही हाल अन्य सभी मतों का भी था। इस कारण ऋषि ने शिवरात्रि के दिन शिव की मूर्ति पर चूहे को स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते देखा तो उन्हें मूर्ति के सर्वशक्तिमान शिव होने में सन्देह हुआ। उनकी शंका का समाधान न उनके पिता कर सके और न उस समय के पण्डितगण ही कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि वह मूर्तिपूजा से विरत हो गये। इस पर भी उन्होंने सत्य को जानने व उसकी खोज करने के प्रयत्न किये। इसी का परिणाम हुआ कि उन्होंने योग्य गुरुओं से योग, आसन प्राणायम, ध्यान व समाधि आदि सभी अंगों का प्रशिक्षण लेकर उसका अभ्यास किया और उसमें कृतकार्य हुए। योग वा समाधि को सिद्ध कर लेने पर भी उनमें विद्या की भूख बनी हुई थी। अनेक विद्वानों व धर्माचार्यों की संगति कर और उनसे थोड़ा थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर वह अन्ततः मथुरा में विद्या के सूर्य प्रज्ञाचक्षु गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के पास पहुँचे और उनका शिष्यत्व प्राप्त किया। लगभग ढाई वर्षों में वह अष्टाध्यायी-महाभष्य

एवं अन्य व्याकरण के ग्रन्थों का अध्ययन कर विद्या में निपुण हो गये। विद्या समाप्त होने पर उन्होंने गुरु से विदाई ली। विदाई व गुरुदक्षिणा के अवसर पर गुरु विरजानन्द ने उनसे संस्कृत व्याकरण व ईश्वर-जीव-प्रकृति विषयक वेदज्ञान सहित वेद, ऋषियों के दर्शन, उपनिषद, शुद्ध मनुस्मृति आदि ग्रन्थों का प्रचार व प्रसार कर देश व विश्व से अविद्या को दूर करने का परामर्श दिया। ऋषि दयानन्द ने अपने गुरु के परामर्श को आदेश मानकर उसे स्वीकार किया और उन्हें वचन देकर वहाँ से वेद प्रचार करने के लिये निकल पड़े। स्वामी जी ने इसके बाद प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया। मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध आदि को उन्होंने अविद्या व मिथ्या सिद्धान्त घेषित किया और इसके लिये शास्त्रार्थ, शंका-समाधान व विचार-विनिमय की चुनौती व प्रेरणा की। ऋषि दयानन्द ने जन्मना जाति को भी वेदविरुद्ध एवं धर्मविरुद्ध घोषित किया और कहा कि सबको शिक्षा प्राप्त करने व वेद पढ़ने का अधिकार है। मनुष्यों में चार वर्ण होते हैं जो जन्मना न होकर गुण-कर्म व स्वभावानुसार होते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वैदिक वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण का अपना पुत्र विद्या में न्यून होने पर अन्य वर्णों का हो जाता है और एक शूद्र बालक भी अपनी विद्या के अनुरूप ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य हो सकता है। महर्षि दयानन्द ने बालविवाह और बेमेल विवाह का निषेध किया और विधवा विवाह को आपद धर्म स्वीकार किया। **महर्षि ने विदेशी अंग्रेजी राज्य का भी विरोध किया और बताया कि स्वदेशी राज्य की तुलना में विदेशी राज्य भले ही वह माता-पिता के समान पक्षपातरहित व न्याय से युक्त हो, पूर्ण सुखदायक कभी नहीं हो सकता।** स्वामी जी ने १६ नवम्बर, १८६९ को काशी में सनातनी पौराणिक पण्डितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ भी किया था। लगभग ३० शीर्ष पण्डित मिलकर भी वेदों से मूर्तिपूजा का समर्थक एक भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके थे। संसार जानता है कि इस शास्त्रार्थ में महर्षि दयानन्द जी की विजय हुई थी।

महर्षि दयानन्द के जीवन के अनेक पहलू हैं जिसमें उन्होंने समाज रक्षा व इसकी उन्नति के लिये महत्वपूर्ण योगदान किया है। उन्होंने नारियों को उनके सभी अधिकार प्रदान किये और मनुस्मृति का श्लोक प्रस्तुत कर बताया कि जहाँ नारियों का सत्कार, सम्मान व पूजा होती है, उस परिवार में सुसन्तान होने से वह घर स्वर्ग के समान होता है। ऋषि दयानन्द के समय में सर्वत्र ईश्वर व जीवात्मा आदि के विषय में अनेक प्रकार के परस्पर विरोधी विचार थे। कुछ लोग ईश्वर को क्षीरसागर में, कुछ पाँचवे आसमान पर तो कुछ सातवें आसमान पर मानते थे। कुछ नास्तिक लोग ईश्वर के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे, जो ईश्वर के नाम पर यज्ञों मे पशुओं को मार कर उनके माँस से आहुतियाँ देते थे। ऋषि दयानन्द ने बताया कि यह सभी मान्यताएं गलत हैं। ईश्वर सर्वव्यापक होने से इस पूरे अनन्त ब्रह्माण्ड व उससे बाहर भी व्यापक है। उन्होंने ईश्वर को सच्चिदानन्द और अजन्मा बताया। इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन व प्रलय ईश्वर के द्वारा ही उपादान कारण सत्व, रज व तमोगुण वाली प्रकृति से होता है। दर्शनों में प्रकृति से यह स्थूल सृष्टि अस्तित्व में कैसे आती है इसका वर्णन भी है। दर्शनों व उपनिषदों के ज्ञान को ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में प्रस्तुत किया है। कर्मकाण्ड में भी उनके समय बहुत विषमताएं थीं। उन्हें दूर करने के लिए उन्होंने संस्कारविधि जैसा उत्तम कर्मकाण्ड का ग्रन्थ दिया। संस्कारविधि में सोलह संस्कारों का वर्णन करने सहित उसकी विधि भी दी गई है। संस्कारों को करने से मनुष्यों का आत्मा सुसंस्कृतज्ञ होता है। ऋषि दयानन्द की प्रमुख देनों में उनके सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ऋग्वेद-यजुर्वेद भाष्य, संस्कारविधि, पंचमहायज्ञविधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, गोकरुणानिधि आदि अनेक ग्रन्थ हैं। यह ग्रन्थ अविद्या दूर कर विद्या का प्रकाश करते हैं। **ईश्वर व जीवात्मा विषयक ज्ञान उनके सभी ग्रन्थों में उपलब्ध होता है जिससे साधारण हिन्दी जानने वाला मनुष्य भी लाभान्वित होता है।** यह भी जान लें कि ऋषि दयानन्द

शेष पृष्ठ १८ पर

सत्य बोलो, मधुर बोलो

(पं० नन्दलाल निर्भय सिद्धांताचार्य पत्रकार,बहीन,जिला-पलवल-हर0)

सुनो सज्जनो ध्यान से, यदि चाहो कल्याण।
बनो विनम्र सुशील तुम, जगत करेगा मान।।
सफलता का सूत्र है, पहले मन में तोल।
कड़वा कभी न बोलना, मधुरवचन नित बोल।।

असंतुलित वाणी के कारण कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। कटु वाणी के दुष्प्रभाव से बचने के लिए ही तुलसीदास जी कहते हैं, अंदर की आत्मा और बाहर का जगत, इन दोनों के मध्य वाणी ही देहरी है। अंदर और बाहर दोनों ओर अगर तुझे प्रकाश चाहिए, तो वाणी की इस देहरी पर प्रभु नाम का बिना तेल-बाती का मणि-दीप रख दे।

आध्यात्मिक महापुरुषों ने आम लोगों के सामने हमेशा 'सत्यं वद' के ही विचार प्रस्तुत किए हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए मनु ने कहा है कि मनुष्य के सारे व्यवहार वाणी पर ही अवलंबित होते हैं।

ईश्वर ने मनुष्य को सबसे बडी नेमत दी है वाणी की। यह मनुष्य के चिंतन का फलित है और उसका साधन भी। चिंतन के बगैर वाणी नहीं और वाणी के बगैर चिंतन संभव नहीं है। चिंतन और वाणी के बिना मनुष्य का अस्तित्व संभव नहीं है।

मनुष्य के रोजमर्रा के जीवन में कई समस्याएं होती हैं। यदि ध्यान दिया जाए, तो कई सारी समस्याओं का समाधान वाणी के संयम और उसके सदुपयोग में निकल सकता है। मनुष्य के सारे चिंतनशास्त्र वाणी पर आधारित हैं। आध्यात्मिक दर्शन का सारा प्रयास विचारों को वाणी में ठीक से पेश करने के लिए होता है। वाणी विचार का शरीर ही है। कोई खास विचार किसी खास शब्द में ही समाता है। यदि हम वाणी के साथ विचार का तालमेल नहीं बिठाते हैं, तो अलग-अलग तरह की कई गलतियाँ हमारे सामने आने लगती हैं। इसलिए गंभीर चिंतन करनेवाले चिंतक निश्चित वाणी की खोज करते रहते हैं। पतंजलि के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने चित्त शुद्धि के लिए योग-सूत्र लिखे, शरीर शुद्धि के लिए वैद्यक लिखा और वाक शुद्धि के लिए व्याकरण-महाभाष्य लिखा। महत्त्वपूर्ण यह है कि व्याकरण का उद्देश्य वाणी की शुद्धि करना माना गया है। भक्ति मार्ग हमें यह शिक्षा देता है कि वाणी से हरिनाम लेते रहना चाहिए। वाणी का मन पर गहरा संस्कार पड़ता रहता है। कोई व्यक्ति अगर सुंदर भजन सुनकर सो जाता है तो सवेरे उठते ही उसे बराबर वही भजन अपने आप याद आता रहता है। भजन का नांद नींद में भी मन में गूंजता रहता है।

वाणी से मित्रता भी की जा सकती है और वैर भी । वाणी का वैर जितना टिकता है, उतना शस्त्रों का भी नहीं टिकता। यदि आपने किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के अनुसार सब कुछ प्रदान कर दिया और साथ ही कड़वे वचन का भी प्रयोग कर दिया, तो आपका सारा किया धरा काम भी समाप्त मान लिया जाता है। इसलिए सारे विश्व से मैत्री की इच्छा रखनेवाले विश्वामित्र की प्रार्थना है- मेरी वाणी में अमृत हो। अक्सर देखा जाता है कि उतावले लोग कटु बोलते हैं। जो लोग लगनशील व परिश्रमी होते हैं, वे भी उतावलेवन में कटु बोल जाते हैं। फिर काम सिद्ध हो जाने के बाद सामान्य हो जाते हैं। यह सही नहीं है। हर परिस्थिति में हमारी वाणी अप्रभावित रहनी चाहिए।

मधुरता सत्य का अनुपान है औश्र मितता उसका पथ्य है। जिसे हम सम्यक वाणी कहते हैं वह सत्य, मित और मधुर होती है और वही परिणामकारक भी होती है। समाज का हित किस बात में है, यह समझना कठिन भी हो सकता है, परन्तु सम्यक वाणी से ही वह सधेगा, यह

किसी भी आदमी के लिए समझना कठिन नहीं होना चाहिए। समाजहित के नाम पर अपनी वाणी दूषित न करें। इन दिनों सभ्य वाणी दुर्लभ हो गई है। सभ्य वाणी को खोकर सुलभ साधनों की प्राप्ति करना कवि की भाषा में कहें तो नेत्र बेचकर चित्र खरीदने के समान है। मानव की महिमा केवल सुलभतम साधनों के संपादन में ही नहीं, अपितु उनको प्राप्त करने, उनका कुशलतम उपयोग करने में है।

वाणी पर संयम चित्त की एकाग्रता से आ सकता है। चित्त की एकाग्रता संगीत सुनने में, संकीर्तन में नहीं होगी, उसकी कसौटी ध्यान में होगी। अक्सर हम ध्यान के लिए सब काम छोड़कर शांत बैठते हैं। तब पता चलता है कि चित्त की कैसी अवस्था है। चित्त की चंचलता की परीक्षा के लिए ध्यान जितना उपयोगी है, उतना दूसरा कोई साधन उपयोगी नहीं है।

ध्यान के समय चित्त इसलिए एकाग्र नहीं होता, क्योंकि उसे आदेश मिलता है- चुप बैठो। चुप बैठो का आदेश मिलता है, तो चित्त दौडने लगता है। व्यक्ति का ध्यान अच्छी जगह भी जा सकता है और गंदी जगह भी। दोनों में ध्यान में बाधा आई, चित्त पर अंकुश नहीं रहा। चित्त पर अंकुश रहता है या नहीं, यह देखना हो तो साधक के लिए ध्यान ही कसौटी है। दूसरी कसौटी नहीं। ध्यान के समय मन यदि इधर-उधर दौडता है, तो ध्यान सधता नहीं है। इससे एक लाभ यह होता है कि मन कहां-कहां गया, यह मालूम चल जाता है। इसके बाद हम मन को नियंत्रित करते हैं। उसे साधते हैं। ❑❑

पृष्ठ १६ का शेष

ने अन्य मतों के बन्धुओं की उन्नति के लिये शुद्धि का समर्थन किया है और स्वयं ही देहरादून में एक मुस्लिम बन्धु व उसके परिवार की शुद्धि की थी।

ऋषि दयानन्द ने मत-मतान्तरों की अविद्या से परिचित करवाने व उसे दूर करने के साथ-साथ संसार के लोगों को ईश्वर के ज्ञान वेदों से परिचित कराया। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी तर्क व युक्तियों से प्रतिष्ठित किया। कर्म-फल सिद्धान्त को भी उन्होंने हमें बताया है। उनके दो ग्रन्थ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश एवं आर्योद्देश्यरत्नमाला अत्यन्त लघु होने पर भी महत्वपूर्ण हैं। यह गागर में सागर के समान हैं। उनको पढ़ लेने से मनुष्य अविद्या से मुक्त एवं विद्या से सम्पन्न हो जाता है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का अध्ययन करने से हमें यह ज्ञात होता है कि असंख्य चेतन, एकदेशी, ससीम, अनादि, अनुत्पन्न, अमर व अविनाशी, जन्म व मृत्यु के बन्धन में बन्धी हुई जीवात्माएं ईश्वर की सन्तानें हैं। इनके सुख व कल्याण के लिये व इनके पूर्वजन्मों के सुख व दुःख आदि फल देने के लिये ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की है। भविष्य में भी यह क्रम चलता रहेगा। हम जैसे कर्म करेंगे, उसका फल हमें बार- बार अनेक योनियों में जन्म लेकर भोगना होगा। मनुष्य जीवन में यदि उपासना व सद्कर्म किये जायें तो मनुष्य लम्बी अवधि के लिये मुक्त हो सकता है। ऋषि ने ईश्वर के सौ से अधिक नामों की व्याख्या भी की है। सभी नाम सार्थक हैं। ईश्वर के अनन्त गुण, कर्म व स्वभाव होने से उसके नाम भी अनन्त हैं। हमें वेद मन्त्रों व उनके स्वाध्याय के साथ ईश्वर का ध्यान करके उसकी उपासना करनी चाहिये। देवयज्ञ को शुद्ध गोघृत व साकल्य से प्रतिदिन करने का विधान भी उन्होंने किया है व उसकी विधि भी हमें प्रदान की है।

ऋषि दयानन्द के कारण ही सारे संसार में ईश्वर के सत्यस्वरूप का प्रचार हुआ है। यदि वह न होते तो हम ईश्वर व जीवात्मा सहित प्रकृति के सत्यस्वरूप अनेक रहस्यों से परिचित न हो पाते। आर्यसमाज की स्थापना करने के लिये संसार उनका ऋणी है। हम उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते। जिन लोगों ने उनके बताये मार्ग को अपनाया है, वे सब प्रशंसा के पात्र हैं और जिन्होंने नहीं अपनाया, वह अपने जीवन को लक्ष्य तक पहुँचाने में सफल न होने से अपनी हानि कर रहे हैं। महर्षि दयानन्द की जय, महर्षि दयानन्द अमर रहे। ❑❑

आर्यों के विमर्श के लिए
कैवल्य-प्राप्ति का राजपथ है पतंजलि मुनि प्रणीत योगदर्शन
योगदर्शन के अन्तिम सूत्र में वर्णित कैवल्य का स्वरूप

(भावेश मेरजा)

महर्षि पतंजलि का योगदर्शन योगविद्या का प्रामाणिक ग्रन्थ है। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने अपने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में योगदर्शन को आर्षग्रन्थ के रूप में मान्यता दी है और इसके कई सूत्र व्याख्यायित किए हैं। योगदर्शन के निम्नलिखित अन्तिम सूत्र (४.३४) में केवल्य की परिभाषा प्रस्तुत की गई है :-

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः केवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।

कैवल्य जीवात्मा की सर्वोच्च अवस्था है। इससे आगे कुछ भी नहीं है। कैवल्य की स्थिति के दो लक्षण इस सूत्र में बताए गए हैं- प्रथम लक्षण है-

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः केवल्यं।

अर्थात् गुणों का प्रतिप्रसव होना। कारणावस्था से कार्यावस्था में परिवर्तित होना प्रसव है जबकि कार्यावस्था से कारणावस्था में चले जाना प्रति-प्रसव है।

अतः इस सूत्र में कहा गया है कि जब सत्त्व-रज-तम अर्थात् मूल प्रकृति से उत्पन्न बुद्धि अहंकार मन आदि पदार्थ (और उनके गुण) अपनी कार्यावस्था को छोड़कर कारणावस्था में चले जाते हैं तब जीवात्मा की जो अवस्था होती है, उसे कैवल्य कहा जाता है।

सत्त्व-रजस्-तमस् ये तीन प्रकार के मूल जड़ तत्त्व हैं और जब तक ये तत्त्व कार्यरूप में परिणत नहीं होते और कारणरूप साम्यावस्था में ही अवस्थित रहते हैं तभी तक उन्हें इस कारणरूप मूलभूत अवस्था में "प्रकृति" कहा जाता है। प्रकृति के भी गुण होते हैं, जिन्हें हम मूल कारण-गुण कह सकते हैं।

ईश्वर इन मूल द्रव्यों को मिलाकर जीवात्मा के लिए महत्तत्त्व (बुद्धि) अहंकार पांच तन्मात्राएं या सूक्ष्म भूत मन सहित एकादश इन्द्रियां पांच स्थूलभूत इत्यादि का निर्माण करता है।

जब सत्त्व-रज-तम अपने मूल स्वरूप में अर्थात् कारणावस्था में होते हैं तब उन तीनों का एक समुदाय रूप नाम होता है प्रकृति। ईश्वर इसी प्रकृति को कारणावस्था से क्रमशः स्थूल कर कार्यावस्था में लाता है।

प्रकृति के गुण कारण गुण हैं उससे उत्पन्न होने वाले महत्तत्त्व(बुद्धि) के गुण कार्य-गुण हैं। कारण-गुण तथा कार्य-गुण को आगे-आगे ऐसे ही समझना होगा।

ईश्वर यह निर्माण जीवात्माओं के पुरुषार्थ अर्थात् भोग और अपवर्ग के लिए करता है। अपने जीवन में भोग और अपवर्ग के लिए जीवात्मा जो कुछ करता है, वही उसका पुरुषार्थ है।

ईश्वर-प्रदत्त इन बुद्धि, अहंकार, मन आदि प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण सदुपयोग से जीवात्मा भोग भी करता है अपने जीवन का चरम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है।

जड़ प्रकृति के कारणरूप गुणों को कार्यरूप में लाने का अर्थात् सृष्टि की रचना करने का प्रयोजन यही होता है कि इन सृष्टिगत साधनों की सहायता से जीवात्मा अपना प्रयोजन सिद्ध कर सके।

जब कोई जीवात्मा शुद्ध ज्ञान शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना से अपनी योग्यता बना लेता है और उसका प्रयोजन सिद्ध हो जाता है फिर उसे उन सत्त्व-रज-तम रूप कारण-गुणों की तथा बुद्धि, अहंकार, मन आदि कार्य-रूप गुणों की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। वे अब उसके लिए कोई काम के नहीं रहते हैं।

इस अवस्था पर्यन्त पहुंचने के लिए तो जीवात्मा को उन गुणों की आवश्यकता थी परन्तु अब वह नहीं रही। इसलिए नहीं रही क्योंकि जीवात्मा का पुरुषार्थ सफल हो गया है उसके प्रयोजन सिद्ध हो गए हैं वह अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गया है। अब उन गुणों से आगे कोई काम लेना शेष नहीं रहा है। वे गुण अब उसके पुरुषार्थ की सिद्धि से रहित हो गए हैं।

उन गुणों से जो सर्वोच्च उपलब्धि सम्भव थी उसे प्राप्त कर लिया गया है। अब आगे कुछ प्राप्तव्य बचा ही नहीं है। अतः अब उन गुणों का कोई औचित्य शेष नहीं रहा। ऐसे में उन गुणों का बने रहना उस जीवात्मा के

लिए निरर्थक है। उसलिए ऐसे गुणों को इस सूत्र में पुरुषार्थ-शून्यानाम् कहा है।

वह जीवात्मा अब उन गुणों से अपना कोई प्रयोजन सिद्ध करना नहीं चाहता है ये गुण अब प्रयोजन-रहित हो गए हैं क्योंकि उन गुणों से वह जीवात्मा को जो प्रयोजन सिद्ध करना था वह तो सिद्ध हो गया है।

ईश्वर उस जीवात्मा के ऐसे प्रयोजन-रहित हो चुके कार्यरूप गुणों को पुनः कारणावस्था में ले जाता है अर्थात् उस जीवात्मा सम्बन्धित महत्तत्त्व (बुद्धि) अहंकार पांच तन्मात्राएं या सूक्ष्म भूतमन सहित एकादश इन्द्रियां इत्यादि सभी कार्यरूप प्राकृतिक पदार्थों का ईश्वर प्रति-प्रसव करता है अर्थात् उन्हें कार्य से कारण अवस्था में मूल उपादान-कारण में परिवर्तित या लीन कर देता है।

अब उस जीवात्मा के साथ न तो सत्त्व-रज-तम इन में से किसी का कोई साक्षात् सम्बन्ध या संयोग रहा और न ही सत्त्व-रज-तम से बने किसी कार्य पदार्थ का कोई साक्षात् सम्बन्ध या संयोग रहा। अब वह जीवात्मा सर्वथा उपकरण-शून्य हो गया न कोई अन्तःकरण रहा और न कोई बाह्यकरण रहा। जीवात्मा केवल जीवात्मा ही रह गया। हां सर्वव्यापक ईश्वर के साथ उसका व्याप्य-व्यापक रूप सम्बन्ध तो अनादि- नित्य होने से यथावत् बना ही रहता है। बस यही कैवल्य है यही मुक्ति की स्थिति है। इसी मुक्ति में उसे जो ज्ञान आनन्द आदि की प्राप्ति होती है, वह बिना किसी प्राकृतिक बुद्धि अहंकार मन आदि से होगी और ईश्वर-प्रदत्त विशेष सहयोग से वह जीवात्मा ज्ञान प्राप्त करता है और ईश्वरीय आनन्द का भोग करता है।

कैवल्य का दूसरा लक्षण इस सूत्र में बताया गया है- स्वरूपप्रतिष्ठा वाचितिशक्तिरिति। (स्वरूप-प्रतिष्ठा वा) अथवा स्वरूप में स्थित चिति-शक्तिः) आत्म-तत्त्व या जीवात्मा। अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप में स्थित हो जाना कैवल्य है।

सूत्र में इति शब्द इस पाद की तथा इस शास्त्र की समाप्ति को दर्शाता है।

यहां चिति-शक्तिका अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप म प्रतिष्ठित हो जाने को कैवल्य कहा है परन्तु विचारणीय यह है कि किस के स्वरूप में जीवात्मा के प्रतिष्ठित हो जाने को कैवल्य कहा है। यदि जीवात्मा केवल स्व-स्वरूप में स्थित होता है, तो यह तो कोई अति विशेष या उच्च अवस्था नहीं हुई। ऐसी नैसर्गिक - स्वाभाविक अवस्था में तो जीवात्मा अल्पज्ञ सत्ता है और जब उसे ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि मन शरीर आदि प्राप्त होते हैं तब वह कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त करने तथा कर्म उपासना करने में समर्थ हो पाता है। परन्तु इस कैवल्य अवस्था में तो वैसे भी वह सर्वथा प्राकृतिक साधनशून्य हो गया है गुणों के साथ उसका कोई सम्पर्क नहीं रहा है। उसका अपना स्वाभाविक ज्ञान भी स्वल्प है। अतः केवल स्व-स्वरूप में स्थित हो जाने मात्र को कैवल्य मानना तो ठीक प्रतीत नहीं होता है।

महर्षि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के उपासना विषय प्रकारण में तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। १.३) इस सूत्र की व्याख्या में द्रष्टुःसर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य स्वरूपे स्थितिं लभते परमेश्वर में स्थिर हो जाना लिखा है। इसलिए जीवात्मा की स्वरूप-प्रतिष्ठा से यह तात्पर्य लेना उचित लगता है कि कैवल्य अवस्था में किसी भी प्रकार के प्राकृतिक साधन से सर्वथा रहित हो कर जीवात्मा ईश्वर के स्वरूप में ईश्वर की सत्ता में अवस्थित हो जाता है।

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध योगसाधक श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक ने भी अपने योगदर्शन भाष्य में इसी सूत्र के सम्बन्ध में लिखा है केवल जीवात्मा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना कैवल्य नहीं है। परन्तु अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना और ईश्वर के स्वरूप में प्रतिष्ठित होना कैवल्य है।

ऐसा जीवात्मा बिना किसी जड़- प्राकृतिक बुद्धि मन साधन का प्रयोग किए केवल ईश्वर के अनुग्रह से ईश्वर-प्रदत्त विशेष शक्ति-सामर्थ्य से सांसारिक दुःखों से सर्वथा पृथक् रहता हुआ ईश्वर के दिव्य आनन्द का अनुभव करता है और उस अनन्त ईश्वर में मोक्ष की नियत अवधि पर्यन्त निर्बाध विचरण करता है। यही कैवल्य या मोक्ष है जो प्रत्येक जीवन-मुक्त जीवात्मा को मरणोपरान्त प्राप्त होता है।

महर्षि पतंजलि मुनि प्रणीत योगदर्शन इसी कैवल्य अवस्था को प्राप्त करने का राजपथ है।

आशा है कि योग तथा अध्यात्म में रुचि रखने वाले पाठक इस पर चिन्तन कर अपनी टिप्पणियों के माध्यम से इस विषय को विस्तृत करेंगे और मेरे इस लेख में कोई त्रुटि पाई जाए तो उसे भी बताने की कृपा करेंगे।

❑❑

आदर्श पुरुष राम

-(अर्जुन देव स्नातक)

भारत की इस पुण्य भूमि ने अनेक पावन महान् आत्माओं को जन्म देकर इस भूमण्डल को कृतार्थ किया है। इन महान् आत्माओं ने इस देश के निवासियों को ही नहीं, अपितु विश्व के सम्पूर्ण मानवों को प्रभावित किया है। अतः ये आत्माएं विश्ववन्द्य हैं। इन्हीं महान् आत्माओं में आदर्श पुरुष राम का नाम भी आज लाखों वर्ष बीत जाने पर भी सभी के लिए वन्दनीय है। मानव तो सभी हैं किन्तु मानवीय लोकोत्तर गुणों से परिपूर्ण मानव ही आदर्श मानव होता है। वह मानव ही क्या जिसमें मानवीय गुण न हों, जो अपने पावन चरित्र एवं गुणों से दूसरों को प्रभावित न कर सके, निश्चय से उसकी संज्ञा मानव नहीं होनी चाहिए। किसी कवि ने सत्य ही लिखा है-

येषां न विद्या न तपो न दानम्,
न ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

मानवीय गुणों से विहीन मनुष्य को मनुष्य नहीं अपितु मनुष्य के रूप में पशु की संज्ञा से युक्त कर देना चाहिए। महान् आत्मा राम आदर्श मानव थे, गुणों से युक्त थे। अतः सर्व पूज्य थे। आइये, विचार करें आदर्श पुरुष राम में कौन से गुण ऐसे हैं जिन गुणों ने हमें प्रभावित किया है तथा वे हमारे लिए लाखों वर्षों के बाद भी वन्दनीय बने हुए हैं। इन गुणों को जानकर हम उन्हें अपने जीवन में आत्मसात् कर सच्चे अर्थों में आदर्श मानव बनने का प्रयत्न करें।

बाह्याभ्यन्तर सौन्दर्य समन्वित-

राम सुन्दर थे, अनुपम सुन्दर थे। वे केवल बाह्य शारीरिक सौन्दर्य से युक्त न थे, अपितु आन्तरिक सौन्दर्य से भी संयुक्त थे। बाल्मीकि कवि ने उनके बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रण इन शब्दों में किया है-

महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।।
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः।।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्।।

वे राम शारीरिक सौन्दर्य में तो विशाल छाती वाले, बहुत बड़े धनुष को धारण करने वाले, छिपी हुई कन्धों की हड्डियों वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, घुटनों तक लम्बी भुजाओं वाले, सुन्दर शिर, मस्तक और पराक्रमी थे। उनका समस्त शरीर सुन्दरता से पूर्ण था, सुन्दर वर्ण वाले, प्रतापी चौडी छाती वाले, विशाल आंखों वाले, धनवान् एवं शुभ लक्षणों से सम्पन्न थे।

आन्तरिक सौन्दर्य में वे राम धर्मज्ञ थे, सत्य से संयुक्त थे, प्रजा के हित में संलग्न थे, यश से संयुक्त थे, ज्ञान सम्पन्न, पवित्र, इन्द्रियों को वश में करने वाले एवं समाधि की साधना में निष्णात थे। इस प्रकार बाहरी और आन्तरिक सौन्दर्य संयुक्त थे।

मर्यादा पालक राम :-

आदर्श पुरुष राम मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। उन्होंने सर्वदा मर्यादा का पालन किया। जिस मां के कारण उन्हें बन जाना पड़ा। उस मां के प्रति भरत, शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण ने भी दुर्वचन कहे। भरत तो क्रोध में आकर माता कैकेयी के लिए यहां तक कहते हैं-

हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्।।

भरत तो माता के वध के लिए भी तैयार थे किन्तु आदर्श पुरुष राम की मर्यादा देखिए। भरत से कहते हैं-

कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत्।।

अर्थात् हे भरत! तुम्हारी माता ने चाहे स्नेह के कारण या लोभ के कारण यह कार्य किया है उसे मन में मत रखना तथा सदा उनके साथ माता के समान व्यवहार करना। यह आदर्श पुरुष राम की मर्यादा है।

राज्याभिषेक को त्यागकर वन जाने के लिए तत्पर राम में किसी भी प्रकार का विकार महाकवि ने नहीं देखा। वे लिखते हैं-

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया।।

सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य छोडकर वन जाने वाले राम के मन में जीवनमुक्त योगियों के समान कोई विकार नहीं देखा गया। यह राम के मर्यादा की पराकाष्ठा है।

राम की मर्यादा का एक दृश्य उस समय का है, जब परम शत्रु रावण का वध हो जाता है। राम उस समय विभीषण से कहते हैं-

मरणान्तानि वैराणि निर्वृतं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

अर्थात् मृत्यु के अनन्तर सब वैरभाव समाप्त हो जाता है, अतः हे विभीषण! यह अब जैसे तुम्हारा भाई है वैसा मेरा भी। तुम इनका सम्मानपूर्वक दाह संस्कार करो। विरले ही मनुष्य में इतनी महत्ता प्राप्त होगी जितनी राम में थी।

निष्काम स्नेही राम

आदर्श राम स्नेह के आगार थे। उनका मातृ-प्रेम, पितृ-प्रेम, एवं भ्रातृ-प्रेम तो सर्वविदित ही है। किन्तु वे गुहराज निषाद, सुग्रीव, विभीषण आदि से भी समान भाव से स्नेह रखते थे। उनका यह स्नेह स्वार्थ भाव से युक्त नहीं था। वे स्वार्थवश किसी को प्रिय नहीं समझते थे, अपितु स्नेही स्वभाव होने के कारण सभी से स्वार्थ रहित होकर स्नेह करते थे। एक स्थान पर राम लक्ष्मण से कहते हैं -

यद् द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत्
नाहं तत्प्रतिगृह्णीयां भक्षान् विषकृतानिव।।

बन्धु-बान्धवों और इष्ट मित्रों का वध करके जो धन प्राप्त हो मैं उसे विष मिले अन्न के समान ग्रहण नहीं कर सकता।

प्रजा पालक राम : -

लोक में रामराज्य एक लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है। राम अपने राज्य में प्रजा को किसी भी दशा में दुःखी नहीं देख सकते थे। किसी संस्कृत के कवि ने राम के प्रजा- पालन की तत्परता को इन शब्दों में व्यक्त किया है-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।

स्नेह, दया, मित्रता, अथवा जानकी को भी प्रजा की रक्षा के लिए, प्रजा को सुख प्रदान के लिए मुझे छोड़ने में कोई व्यथा नहीं होगी।

राम के गुणों का कहां तक वर्णन किया जाए वे तो- **"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्"** के साक्षात् मूर्ति थे। वे चरित्रवान्, विनयी, स्नेही, सहृदय, संवेदनशील, दयालु एवं पराक्रमी, सत्यपालनादि गुणों से युक्त थे। मारीच उनकी प्रशंसा में कहता है-

न च पित्रा परित्यक्तो रामः नामर्यादः कथञ्चन।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः।।
न च धर्मगुणैर्हीनः कौशल्यानन्दवर्धनः।
न तीक्ष्णो न च भूतानां सर्वेषामहिते रताः।।

अर्थात् श्रीराम न पिता द्वारा परित्यक्त हैं, न अमर्यादित हैं, न लोभी, न आचारहीन और नहीं क्षत्रिय कुलकलंक हैं। कौशल्यानन्दन राम धर्म एवं सदगुणों से युक्त हैं वे उग्र स्वभाव वाले व प्राणियों को सताने वाले नहीं हैं अपितु वे सबके हितैषी हैं। बाली की पत्नी तारा भी राम की प्रशंसा इन शब्दों में करती है-

आर्तानां संश्रयश्चैव यशश्चैकभाजनम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः।।

इस प्रकार राम अद्वितीय महापुरुष थे। वे समस्त गुणों के आगार थे। उनका चरित्र, उनके गुण, उनके कार्य सभी के लिए अनुकरणीय हैं। उनके गुण, उनका चरित्र, उनके कार्य आदि सभी आदर्श से पूर्ण थे। अतः आदर्श पुरुष राम युग-युग से वन्दनीय रहे हैं, आने वाले युगों में भी वन्दनीय रहेंगे।

❑❑

माँ-बाप जिन्दगी के पेड की जड होते हैं।

-(गंगाशरण आर्य,शाहबाद मोहम्मदपुर,नई दिल्ली,मो0:-०९८७१६४४१६५)

हमारी भारतीय संस्कृति में अतीत का गौरवशाली इतिहास रहा है। बुजुर्गों के प्रति आदर व सम्मान का भाव होता था। एक तरफ जहाँ हम पिता के चेहरे में भगवान देखते थे, वहीं माँ के चरणों में हमें स्वर्ग दिखाई देता था। समाज सुसंस्कारों से सम्पन्न था लेकिन वर्तमान में सभ्यता व संस्कृति से परे रहने वाले संस्कार विहीन, आधुनिक शिक्षा के बोझ तले दबे, अंग्रेजियत की शिकार भावी पीढ़ी स्वयं को ज्यादा समझदार समझने लगी है, आज की पीढ़ी के लिए माता-पिता उनके पालक और पोषक नहीं हैं बल्कि उनके जीवन में आगे बढ़ने के लिए केवल एक सहारा हैं। कहने का मलतब है कि वे अपने माता-पिता का केवल अपने मतलब के लिए प्रयोग करते हैं, उनके लिए रिश्तों के कोई मायने नहीं हैं, उनके लिए हर रिश्ता एक सीढ़ी की तरह है जिस पर वो पाँव रख कर आगे निकल जाते हैं और जब उस सीढ़ी का कोई प्रयोग नहीं होता तो उसे घर के टूटे कुर्सी, मेज, टूटे-फूटे, बर्तन, पुराने कपड़े, पुराने अखबार आदि की तरह रद्दी समझकर किसी कबाड़खाने या स्टोररूम में रख देते हैं लेकिन जिन्दगी सीढ़ी की तरह ऊपर नहीं जाती, जिन्दगी पेड़ की तरह बढती है। माँ-बाप किसी सीढ़ी के पहले पायदान नहीं होते बल्कि माँ-बाप जिन्दगी के पेड़ की जड होते हैं। पेड़ कितना ही बड़ा क्यों न हो जाए, कितना ही हरा-भरा क्यों न हो जाए जड़ काटने से वह हरा-भरा नहीं रह सकता, उसकी बढ़वार खत्म हो जाती है। इसलिए मैं आज बड़ी विनम्रता और आदर से लेखनी के माध्यम से पूछना चाहता हूँ कि जिन बच्चों की खुशियों के लिए माँ-बाप अपनी मेहनत की पाई-पाई हँसते-हँसते उन पर खर्च कर देते हैं वो ही बच्चे जब बाप की आँखें धुँधली हो जीती हैं अर्थात् जब वे जरावस्था (बुढापे) से गुजरते हैं तो उन्हें कतरा भर रोशनी देने से क्यों कतराते हैं अर्थात् उनका सहारा बनने में उन्हें तकलीफ क्यों होती है? जब माता-पिता अपने बेटे की जिन्दगी का पहला कदम उठाने में उसकी मदद कर सकते हैं तो बच्चे अपने बाप के आखिरी कदम उठाने में उसे सहारा क्यों नहीं दे सकते? जिन्दगी भर अपने बच्चों पर खुशियाँ लुटाने वाले माँ-बाप को किस जुर्म में, आँसुओं और तन्हाई की सजा सुना दी जाती है? अगर वो हमें प्यार दे नहीं सकते तो उन्हें हमारा प्यार छीनने का अधिकार किसने दिया? जिन माता-पिता के कारण उन्होंने अपनी आँखें संसार में खोलीं, जिन्होंने मिलकर के अपनी सभी सन्तानों का पालन-पोषण किया। वृद्धावस्था आने पर जब उनका अनुभव जवान होता है तब उनके अच्छे व बुरे अनुभवों का लाभ न उठाकर उन्हें एकाकी जीवन जीने पर मजबूर कर दिया जाता हैं क्यों? आधुनिक युग में पले आजकल के ये बच्चे उन्हें दो हिस्सों में बाँटकर अलग-अलग तड़पने के लिए कैसे छोड सकते हैं? क्या जिन माता-पिता ने अपने सारे बच्चों का पालन-पोषण यक साथ यक छत के नीचे रख कर किया वे सन्तान एक छत के नीचे रहकर अपने माता-पिता की देख-रेख नहीं कर सकती? क्या यही दिन देखने के लिए माता-पिता ईश्वर से सन्तान माँगते हैं? इसी दिन के लिए? औलाद शायद ये भूल रही है कि जो हमारा आज है, वो कल उनका होगा, अगर आज हम माँ-बाप बूढ़े हो गए हैं तो कल वो भी जवान

नहीं रहेंगे, जो सवाल आज हम इनसे कर रहे हैं कल ये भी बूढ़े हो जाने पर वही सवाल अपनी सन्तान से पूछेंगे? यदि आज इस विडम्बना की स्थिति से बाहर निकलना है तो हमें निम्न कहानी पर ध्यान देना होगा। उसे अपने जीवन में उतारना होगा तभी सबका कल्याण सम्भव हो सकेगा। कहानी इस प्रकार है:-

मने सुना था किसी गाँव में आग लगी सभी भाग गए और दो जलने के लिए मजबूर थे। एक अन्धा, एक लंगडा। अन्धा भाग तो सकता था पर उसे आग दिखती नहीं थी, लंगडे को आग दिखती थी पर वह भाग नहीं सकता था। लंगडे ने अन्धे से कहा कि तुम हमें अपने कन्धे पर बिठा लो आँख हमारी पाँव तुम्हारे दोनों आग से बच जाएंगे। अन्धे ने लंगडे को कन्धे पर बिठा लिया दोनों बच गए। यह कहानी बडा सार्थक सन्देश देती है आज भी चारों तरफ आग लगी है ईर्ष्या की, अशान्ति की और अगर समाज बचना चाहे तो एक ही उपाय है अन्धा लंगडे को कन्धे पर बिठा ले। अन्धा कौन? और लंगडा कौन? अन्धी जवानी और लंगडा बुढापा। अगर आज अन्धी जवानी लंगडे बुढ़ापे को कन्धे पर बिठा ले, चरण हों युवक के और अनुभव की आँख हो वृद्ध की तो आज भी समाज इस अशान्ति की आग से बच सकता है। और अगर वृद्धों का सम्मान नहीं हुआ तो सोने की लंका नही बची, फिर कौन बचेगा।

अतः अपने परिवार, समाज व देश का कल्याण चाहते हो तो पेड़ की जड़ को पहचानो उसी के सहारे पौधा जीवन्त रहता है अन्यथा उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। हमारे जीवन की एकमात्र जड़ हमारे माता-पिता हैं जिनके अनुभवों के सहारे हमारी उन्नति सही दिशा में होती है और हम फलते-फूलत हैं। यदि ऐसा नहीं किया तो जिस प्रकार पेड़ की जड़ काट दिए जाने पर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है उसी प्रकार हमारा अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा।

❑❑

पृष्ठ १२ का शेष

अंग्रेजों कें पेंशनर (१७६२ ई०) बन गये। फिर भी लेखक तुर्कों और मुगलों को देश के रक्षक लिखकर इतिहास के विद्यार्थी से छल कर रहा है। क्रूर भेड़िये को महात्मा के कपड़े पहनाने से उसका हिंसक स्वभाव नहीं बदल सकता। आक्रमणकारियों को महान प्रचारित करने से पूर्व इतिहास लेखकों को यह बताना होगा कि उन (तुर्क, मुगलों) ने भारत देश व उसकी मूल जनता (हिंदू) की सुख-समृद्धि के लिए कौन से महान कार्य किये, जिन्हें उनसे पहले (गुप्त सम्राट व हर्षवर्धन आदि) व समकालीन हिन्दू राजा (दुर्गावती, प्रताप, शिवाजी आदि) नहीं कर पाए। हम सभी मुस्लिम शासकों को बिल्कुल गुणहीन नहीं कह रहे हैं, पर यह सत्य है कि वे विदेशी आक्रमणकारी थे और उन्होंने यहाँ की हिन्दू जनता को घृणित दृष्टि से ही देखा। उनके वंशजों में आज भी शासक होने का अभिमान है।

कोई किसी को भी आदर्श (महान) मान सकता है, यह उसकी व्यक्तिगत पसन्द है, पर इतिहास लेखक यदि अपनी पसन्द पाठकों या विद्यार्थियों पर थोपेगा, तो उसका यह कार्य देश के भविष्य के आधार को नष्ट करने वाला माना जायेगा। दैनिक जागरण (६ फरवरी, २०१८) में लिखा है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में आज भी भगतसिंह, सूर्यसेन आदि क्रांतिकारियों को आतंकवादी पढाया जा रहा है। **'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष'** पुस्तक के मुख्य लेखक जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बिपिनचन्द्र हैं। हाँ, वही बिपिनचन्द्र कम्यूनिस्ट विचारधारा के मुख्य संवाहक और प्रो० सतीशचन्द्र के मुख्य सहयोगी। अब आप ही बताएँ, देश की जनता आतंकवादयों(?) का अनुकरण करे या अंग्रेजों की महानता के आगे सिर झुकाए! क्या देश इन लेखकों की कुटिल मानसिकता को समझेगा? देश स्वतंत्र और विदेशी चाल! तभी तो-

मुस्कानों में छिपी कुटिलता से डर लगता है,
जीवन की अनबूझ जटिलता से डर लगता है।
छोटी-छोटी खुशियाँ ही पागल कर देती हैं,
असफलता से नहीं सफलता से डर लगता है।।

❑❑

डॉ0 बाबासाहब अंबेडकर के दलित आन्दोलन में ब्राह्मणों का योगदान

(डॉ0 पी0 जी0 ज्योतिकर अनुवाद : जयंतिभाई पटेल)

कुछ समय से दलित समाज में क्रांतिकारी नेता के विषय में एक मापदण्ड देखा जाता है। अनुभव किया जा रहा है, दलित समाज की सभाओं में जो ब्राह्मणों को वीभत्स गालियाँ, हिन्दू देवी-देवताओं का मजाक एवं महात्मा गाँधी जी का मजाक अपने भाषणों में जो करता है, वह वक्ता-नेता महान् क्रांतिकारी, उद्यमवादी प्रगतिशील माना जाए!! सभाओं में तालियाँ, और यह सब हो रहा है पू0 बोधिसत्व डॉ0 बाबासाहब अंबेडकर जी के नाम पर.. कुछ हमारे मित्र जन तो दलितस्तान भी बाबासाहब जैसे देशभक्त के खाते में जमा कराने का अपराधजन्य कुकृत्य भी कर रहे हैं। आइए, आज हम बाबासाहब के जीवन की कुछ हकीकतें जानें और गंभीरता से उसके बारे में सोचें।

१. वर्षा से भीगे हुए छोटे से भीम को अपना रूढिचुस्त ब्राह्मणत्व भूल कर अपने घर ले जाकर ब्राह्मण पत्नी द्वारा गरम पानी से अपने पुत्र के साथ स्नान कराने वाले शिक्षक पेंडशे गुरुजी का अपने ५०वें जन्मदिन पर बोधिसत्व डॉ0 बाबा साहब स्मरण करते हुए कहते हैं- 'स्कूल जीवन का यह मेरा पहला सुख था।'

२. उनके ब्राह्मण शिक्षक कृष्णजी केशव अंबेडकर (अम्बावाडेकर) ने अपना टाइटल अंबेडकर को प्रदान किया। आज यह अंबेडकर टाइटल गुरु-शिष्य के प्रेम की अद्‌भुत मिसाल है एवं करोडों किंकरों के लिए प्रेरणारूप है।

३. लश्करी केम्प स्कूल सतारा (साल्वेशन आर्मी स्कूल) में जातिभेद अल्प मात्रा में था। वहाँ पर कृष्ण जी केशव अंबेडकर (१८५५-१९३४) शिक्षक थे। (पिता केशव अंबेडकर स्थानीय शिवालय के पुजारी थे) वह अपने सारे शिष्यों के प्रति समान भाव रखते थे। दोपहर में छुट्टी के समय भीम भोजन करने घर जाता था एवं स्कूल में देर से आया करता था किन्तु गुरुजी को वह पसंद नहीं था। अतः गुरुजी हमेशा अपने टिफिन में खाना ज्यादा लाते थे और भीम को बड़े प्रेम से खिलाते। डॉ० भीमराव जी ने गुरुजी के वह खाने का स्वाद जीवन पर्यन्त याद रखा था। अपने जन्मदिन-हीरक महोत्सव के समय नरे पार्क (मुंबई) में विशाल जन समूह के समक्ष इस प्रसंग का गौरव के साथ जिक्र करते हुए कहा था- 'स्कूल जीवन की मेरी यह द्वितीय मधुर स्मृति है।'

४. सन् १९३० को गोलमेज परिषद के लिए कार्य के लिए अभिनंदन देते हुए गुरुजी के पत्र को बड़े प्रेम से संभाल के रखा है, यह कहना भी वह कभी भूलते नहीं थे। गुरुजी जब शिष्य को मिलने राजगृह (दादर) आए तब डॉ० भीमराव ने १९३४ के दिन गुरुजी को दण्डवत् करते हुए श्रीफल, धोती, चादर की दक्षिणा अर्पण की थी। दिनांक २२.१२.१९३४ के दिन गुरुजी के देहांत होने पर डॉ० भीमराव को अपार दुःख हुआ था।

५.ब्राह्मण नारायण मल्हावराय जोषी(१८७९-१९५५) भारतीय मजदूर क्रांति के जनक (मराठी साहित्यकार वा. जोषी के अग्रज) १९०२-१९०६ मुंबई के एल्फिस्टन हाईस्कूल में डॉ० भीमराव के वर्ग शिक्षक थे। जिन्होंने विद्यार्थी भीम को पिछली बेंच से उठाकर प्रथम बेंच में बिठाया और ब्लैकबोर्ड पर लिखने के लिए कहा।

६. मैट्रिक के बाद अभ्यास के लिए वडोदरा महाराजा

श्रीमंत सयाजीराव की शिष्यवृत्ति लेने के लिए महाराजा से मुंबई में मुलाकात कराने वाले यान्दे भी ब्राह्मण ही थे। गोरगाँव में उनका प्रसिद्ध निर्णयसागर प्रेस था जिसमें महाराजा के राज्य का संपूर्ण साहित्य छपा था। अतः वह महाराजा के घनिष्ठों में से एक थे। दादा केलुस्कर (भंडारी जाति) उनके साथ गए थे, पहचान यान्द जी की थी।

७. दिनांक ४.६.१९१३ के दिन वडोदरा राज्य एवं भीमराव अंबेडकर के बीच स्टाम्प पेपर पर विदेश में उच्च पढ़ाई हेतु शिष्यवृत्ति-आर्थिक सहायता विषयक दस्तावेज लिखा गया। दस्तावेज के लेखक तथा दस्तावेज में अंबेडकर के पक्ष में साक्षी देकर हस्ताक्षर करने वाले त्रिभोवन जे० व्यास एवं ए० जी० जोशी नाम के ब्राह्मण थे।

८. बहिष्कृत हितकारिणी सभा (१९४२) के अध्यक्ष चिमनलाल सेतलवाड ब्राह्मण थे। साथ में अन्य और सवर्ण हिन्दु साथी तो थे ही....।

९. महाड सत्याग्रह (कोलाबा जिला बहिष्कृत परिषद १९-२० मार्च १९२७) में कार्यक्रम के अंत में डॉ० अंबेडकर की अगवानी में एक विशाल रैली निकालकर चवदार तालाब में प्रवेश करके पानी पीने का प्रस्ताव रखने वाले अनंतराव विनायक चित्रे (१८९४-१९५९) भी कायस्थ ब्राह्मण थे जिन्होंने बाद मर्में डॉ० अंबेडकर को सामयिक जनता साप्ताहिक में एडिटर के रूप में वर्षों तक सेवा दी थी। सन् १९२८ में इन्दौर में दलित छात्रावास भी चलाते थे।

१०. वैदिकविधि से दलितों को यज्ञोपवीत, सामूहिक भोजन का आयोजन इत्यादि कार्यक्रमों के हेतु स्थापित समाज समता संघ के महत्व के अग्रणी लोकमान्य तिलक के सुपुत्र श्रीधरपंत ब्राह्मण थे, तिलक जिन्होंने ब्राह्मणों की नगरी पूणा में गायकवांड सवर्णों के विरोध के बीच भी दलित-सवर्णों का समूह भोजन करवाया था। श्रीधर पंत ने जब आत्महत्या की उसके एक दिन पूर्व अपने स्वजन मानते हुए डॉ० अंबेडकर को पत्र लिखकर आत्महत्या की जानकारी दी थी।

११. समाज समता संघ के मुखपत्र समता के एडिटर देवराम विष्णु नायक गोवर्धन ब्राह्मण थे, जो पीछे से जनता साप्ताहिक के एडिटर भी रहे एवं बाबासाहब के अंतरंग साथी रहे।

१२. महाड सत्याग्रह केस (२० मार्च १९२७) दीवानी केस ४०५/१९२७ में शंकराचार्य डॉ० कृतकोटि डॉ० अंबेडकर के पक्ष में साक्षी रहे थे। उनकी साक्षी लेने वाले कोर्ट कमीशन भाई साहब महेता भी ब्राह्मण थे। डॉ० अंबेडकर के पक्ष में वह फैसला आया था और ४०५-१९२७ केस का फैसला देने वाले न्यायमूर्ति वि० वि० पण्डित भी ब्राह्मण ही थे। दस साल बाद १७.३. १९३७ के दिन हाइकोर्ट ने डॉ० अंबेडकर के पक्ष में फैसला सुनाया था।

१३. उसी काल में (९,१०-१२-१९२७) वृहद महाराष्ट्र परिषद वेदशास्त्र पारंगत नारायण शास्त्री मराठे की अध्यक्षता में अकोला में मिली जिसमें सैकडों वेद पारंगत ब्राह्मण उपस्थित थे। इस ब्राह्मण परिषद ने यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित करके सामाजिक समता की हिमायत की थी। अधिक प्रस्ताव १३ पारित कर घोषणा की गई कि 'अस्पृश्यता, शास्त्र आधारित नहीं है।' मानव मात्र को वेद अध्ययन का अधिकार है। स्कूल, धर्मशाला, कूपों, तालाब, मंदिर तमाम जगहों पर प्रवेश करना सबका समान रूप से अधिकार है। किसी को भी अस्पृश्यता को मान्यता नहीं देनी चाहिए। उक्त परिषद के प्रमुख संचालकों में से पांडुरंग भास्कर शास्त्री पालेच (ब्राह्मण) थे। डॉ० अंबेडकर को जो अपेक्षित था, वह इस ब्राह्मण परिषद ने प्रस्ताव द्वारा प्रोत्सहित किया।

१४. कमलकांत वासुदेव चित्रे (१८९४-१९५७) समाज समता संघ के बुनियादी कार्यकर्ता, सिद्धार्थ कॉलेज की संस्थापना एवं विकास के राहबर, पीपल्स

एज्युकेशन सोसायटी के गवर्निंग बोर्ड के सदस्य, डॉ० बाबा साहब के पुनर्विवाह के समय (दिल्ली) विवाह रजिस्ट्रेशन के समक्ष वधु की ओर से) डॉ० शारदा कबीर के पक्ष की ओर से दो दस्तख्त करने वाले डॉ० शारदा के भाई वसंत कबीर एवं कमलकांत चित्रे ब्राह्मण थे।

१५. १९४५ में डॉ० अंबेडकर को सर्वप्रथम सम्मान पत्र से सम्मानित करने वाले सोलापुर म्युनिसिपल के प्रमुख डॉ० वि० वि० मूले ब्राह्मण थे। सम्मान पत्र के प्रति उत्तर में डॉ० अंबेडकर ने कहा- आज से बीस साल पूर्व डॉ० वि० वि० मूले के सहयोग के कारण ही मैं समाजसेवा के क्षेत्र में आया हूँ।

१६. स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्रीमण्डल में डॉ० अंबेडकर के नाम का सूचन-आग्रह करने वाले चक्रवर्ती राजगोपालचार्य भी ब्राह्मण ही थे।

१७. डॉ० अंबेडकर ने १९५४ में भारतीय बौद्ध महासभा नामक संस्था की रजिस्ट्री करवाई। इस संस्था के ट्रस्टी में बालकृष्णराव कबीर (डॉ० अंबेडकर के साले) को लिया गया, जो सारस्वत ब्राह्मण थे। भारतीय बौद्ध महासभा का प्रथम नाम भारतीय बौद्ध जनसंघ (१९५१) था फिर भारतीय बौद्ध जन समिति (१९५३ में) और अंत में भारतीय बौद्ध महासभा नाम रखा गया।

१८. १४ अक्टूबर १९५४ की अशोक विजया दशमी के दिन नागपुर में डॉ० अंबेडकर द्वारा बौद्ध-धर्म की दीक्षा लेने एडवोकेट अनंत रामचन्द्र कुलकर्णी (मंत्री बौद्ध समिति) और नागपुर के सेशन जज न्यायमूर्ति भवानीशंकर नियोगी भी ब्राह्मण ही थे। कुलकर्णी १९४० से नागपुर में बौद्धधर्म का प्रचार करते थे जबकि मध्य प्रदेश सरकार द्वारा नियोगी कमीशन की रिपोर्ट के इस बौद्धकर्ता ने ईसाइयत में धर्मान्तरण के विरोध की पेशकश की थी।

इस तरह समाजसेवा की प्रवृति एवं संघर्ष में भी ब्राह्मण समाज डॉ० अंबेडकर के पास में रहा था। उनको हम डॉ० अंबेडकर और ब्राह्मणों के बीच ऋणानुबंधी संबंध कहें कि संयोग ....परन्तु सत्य तो यही है।

गौरव घोष, नवम्बर २००६ से साभार।

ये तथ्य डा० पी०जी० ज्योतिकर द्वारा लिखे 'डा० बाबसाहेब अंबेडकर के दलित आंदोलन में ब्राह्मणों का योगदान' नामक लेख, अनुवादः जयंतिभाई पटेल, में उपलब्ध हैं। हिंदी में अनुवादित यह लेख डा० के० वी० पालीवाल रचित पुस्तक 'मनुस्मृति और डॉ० अंबेडकर' के परिशिष्ट में छपा है।

❑❑

पृष्ठ १४ का शेष

आर्यसमाज ने राष्ट्रीय आंदोलनों में भी पूरे उत्साह से काम किया। स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द, लाला लाजपतराय, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, श्याम जी कृष्ण वर्मा आदि सैकड़ों क्रांतिकारी तो आर्यसमाजी परिवारों से थे। आर्यसमाज के राष्ट्रवादी कार्यों को लेकर अंग्रेज भी पूर्ण सजग थे। जो सत्यार्थ प्रकाश धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात कर रहा था, उसे राष्ट्र की स्वाधीनता का स्रोत मानकर इलाहाबाद में उस पर देशद्रोह का केस लगाया गया। इलाहाबाद न्यायालय के न्यायाधीश मि० पी० हैरिसन ने निर्णय में लिखा- **"दयानन्द के उपदेश और प्रार्थनाएँ विदेशी शासन को तुरन्त उलट देने के लिए नहीं, अपितु ऐसा सुधार करने के लिए हैं, जिनसे हिन्दू भविष्य में अपना शासन करने में समर्थ हो सकें।"** ऐसे बहुत से उदाहरण आर्यसमाज और उसके संस्थापक की राष्ट्रीय उपलब्धियों के प्रमाणस्वरूप दिये जा सकते हैं। आर्य- समाज मानवहित की समग्र सोच को लेकर चलता है। आर्यसमाज स्वभावतः क्रान्तिधर्मी संगठन है, राष्ट्रीय चेतना इसकी अभी तक खुलकर सामने न आने वाली उपलब्धि रही है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/५/२०१६
भार- ४० ग्राम

मई 2019

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6

Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा० .....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।